CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मारिका

सराक विद्वत् संगोष्ठी

दिल्ली, ११-१३ फरवरी १९९९ ई०

4630

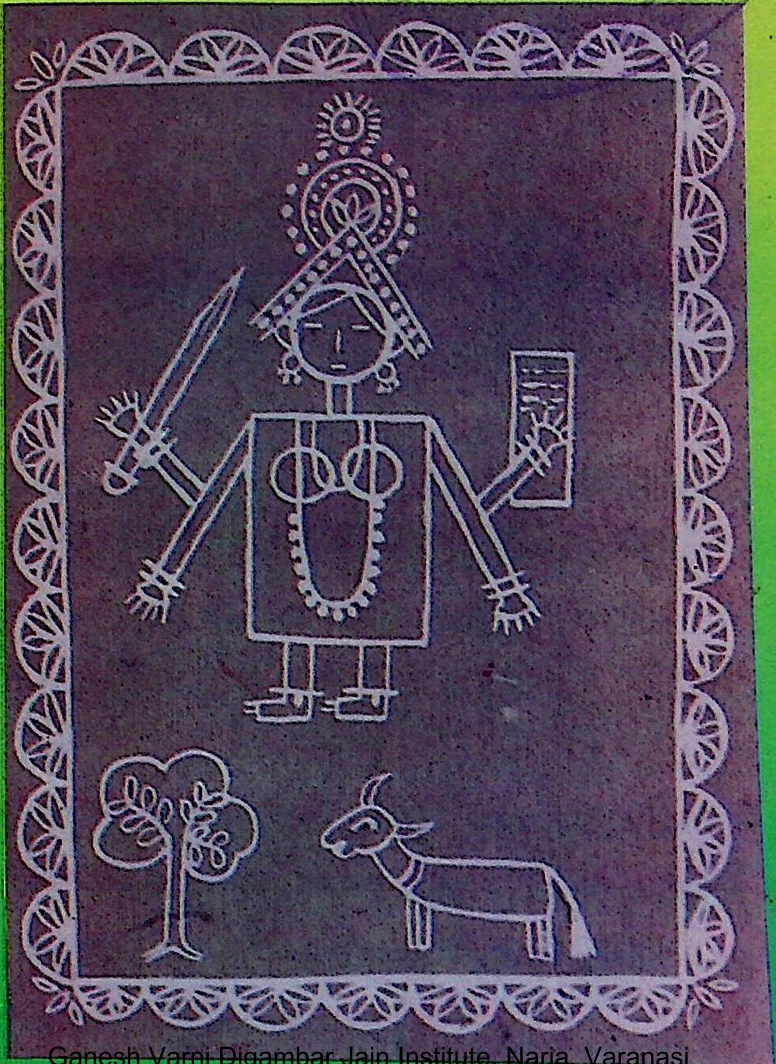

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राष्ट्र सन्त उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में सरधना में ज्ञान कांफ्रेंस में बैठे हुए नवभारत टाइम्स के सम्पादक अक्षय कुमार, डा० शीतल प्रसाद जी, डा० सुमन जी एवं अन्य अतिथिगण

राष्ट्र सन्त उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में सरधना में ज्ञान कांफ्रेंस में सम्पादक अक्षय कुमार जी सभा को सम्बोधित करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मारिका

सराक विद्वत् संगोष्ठी

(11-13 फरवरी 1996 ई०)

गान्धीनगर, दिल्ली

2630

सम्पादक

डा० नीलम जैन
सम्पादिका-महिलादर्श
68, मिशन कम्पाउण्ड,
सहारनपुर (उ०प्र०)

डा० जयकुमार जैन
महामन्त्री-अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्
261/3 पटेलनगर, नई मण्डी,
मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मारिका

सराक विद्वत् संगोष्ठी, गान्धी नगर, दिल्ली

मुनिश्री वर्धमानसागर जी महाराज की पंचम पुण्य तिथि फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा (23 फरवरी 1997) पर प्रकाशित

प्रकाशक :
आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला

ग्रन्थमाला सम्पादक :
डा० जयकुमार जैन

सम्पादक :
डा० नीलम जैन, सहारनपुर
डा० जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

सौजन्य :
श्री सुमत चन्द देवेन्द्र कुमार जैन (बैटरी वाले)
बजाज बैटरी हाउस, छीपी टोला, आगरा
फोन- फैक्टरी-364006, निवास-369635

प्राप्ति-स्थान :
डा० जयकुमार जैन
261/3, पटेलनगर, मुजफ्फरनगर-251001
दूरभाष-0131-403730

मूल्य : रु० 25

मुद्रक :
देव प्रिण्टर्स
59, पटेलनगर, मुजफ्फरनगर-251001
दूरभाष-0131-404557

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थमाला सम्पादकीय

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद से स्थापित आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला ने जैन समाज में अपना एक महनीय स्थान बनाया है। 23-24 मई 1990 को पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं पूज्य मुनिश्री वैराग्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में बुढ़ाना में एक भव्य विद्वद् गोष्ठी का आयोजन हुआ था। इसमें देश के मूर्द्धन्य विद्वानों ने भाग लिया था। इस अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् का अधिवेशन भी हुआ था। उसमें विचार आया था कि एक ऐसी ग्रन्थमाला की स्थापना होनी चाहिए, जहाँ से समाजोपयोगी साहित्य का प्रकाशन हो सके। कुछ दिनों के पश्चात् श्रुतपंचमी के दिन श्रुत प्रकाशन एवं संरक्षण हेतु 'आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला' की स्थापना हुई।

इस ग्रन्थमाला से अब तक तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (द्वितीय संस्करण) भाग 1 से 4 सहित लगभग 14-15 ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। 11 - 13 फरवरी 1996 में गांधीनगर दिल्ली में एक ऐतिहासिक सराक विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन डा० नीलम जैन, सहारनपुर के संयोजकत्व और डा० श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत एवं डा० नलिन शास्त्री, बोधगया के सह-संयोजकत्व में हुआ था। उसमें देश के विविध अंचलों से अनेक मनीषियों ने अपने आलेखों का वाचन किया था। यह ग्रन्थमाला इन आलेखों का प्रकाशन कर अपने को गौरवित समझ रही है।

यह स्मारिका परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनिश्री वैराग्यसागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद का सुफल है। सर्वप्रथम उनके चरणों में विनम्र नमोऽस्तु करना मेरा कर्तव्य है। भैया ब्र० अतुल जी ने इसके प्रकाशन हेतु समय-समय पर प्रेरणा एवं परामर्श देकर मुझे उपकृत किया है, मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। संगोष्ठी के संयोजक/सहसंयोजकों के प्रति विनत हूँ, जिनकी कृपा से यह स्मारिका ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो रही है। इसमें जो कुछ अच्छाईयाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, वे सुधी मनीषी आलेख वाचकों एवं डा० नीलम जैन, सहारनपुर, डा० श्रेयांस जैन, बड़ौत एवं डा० नलिन शास्त्री बोधगया की है। कमियों का उत्तरदायित्व मेरा है। मुझे विश्वास है विद्वान् पाठक नीरक्षीर विवेकी हंस की तरह इसमें से अच्छाईयों की ओर ही दृष्टिपात करके मेरा उत्साहवर्धन करेंगे।

विनीत

261/3, पटेलनगर
मुजफ्फरनगर

डा० जयकुमार जैन
महामन्त्री-अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्
ग्रन्थमाला सम्पादक
आ० शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

सराकोद्धारक, आत्म-साधक परम तपस्वी एवं मनस्वी पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी के श्री चरणों का सामीप्य मई '95 में सहारनपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर प्राप्त कर निकटता से सराक बन्धु और सराक-क्षेत्र के विषय में जानने का सुअवसर प्राप्त हुआ, तीर्थंकरों की विहार स्थली, तीर्थ क्षेत्रों की आधारस्थली प्रतिपल प्रणम्य पूज्य धरा की वर्तमान स्थिति से पूर्णतः अनभिज्ञ हम सबको यही पश्चात्ताप और दुःख हुआ कि हम जिन क्षेत्रों की प्रतिदिन पूजार्चना करते हैं उनके प्रति हमारा झुकाव कितना उपेक्षापूर्ण है। पूज्य उपाध्याय श्री से सभी समाज के बन्धु विस्तार से सराक क्षेत्र के विषय में जानने का निवेदन करते थे, पूज्य गुरुदेव से वर्तमान में वहाँ रहने वाले अपने ही श्रावक भाईयों की करुण एवं दर्दान्तक अवस्था से सभी द्रवित हो गए और तत्काल ही पंचकल्याणक के मांगलिक अवसर पर उनको आमन्त्रित करने का निर्णय लिया गया जिससे हम और वे आपस में एक दूसरे को जानें-पहचानें तथा उनकी समस्याओं को जानकर समाधान करने को हम सचेष्ट हो सकें।

सराक भाईयों के आगमन से इनके दृढ़ नैतिक संस्कार और श्रावकाचार देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। तत्काल वहाँ उपस्थित सभी विद्वानों, श्रेष्ठीजनों एवं अन्य क्षेत्रों से आए वरिष्ठ जनों ने यह निर्णय लिया कि सर्वप्रथम आवश्यकता है सम्पूर्ण भारतवर्ष में सराक क्षेत्र और सराक ज़ाति के प्रचार-प्रसार की तथा समाज को इनसे आत्मीयता की। नवम्बर में पुनः बड़ागाँव चातुर्मास में सराक सम्मेलन एवं पत्रकार सम्मेलन हुआ। पत्रकारों को सराकों के विषय में ज्ञान हुआ। पूज्य उपाध्याय श्री जी से पत्रकारों की वार्ता हुई। अनेक पत्रकारों ने सराकों पर विशेषांक प्रकाशित किए और इस यात्रा को अविराम गतिमान और विश्वसनीय प्रारूप देने के लिए यह भी आवश्यक समझा गया– एक प्रामाणिक विचार संकलन देश के मान्य विद्वानों, पुरातत्त्ववेत्ताओं, इतिहासवेत्ताओं एवं मनीषियों का हो जिससे जैन पुरातत्त्व की धरोहर संरक्षण भी हो तथा वह काल की चपेट से वीरान हुआ श्यामल क्षेत्र पुनः धन-धान्य से सम्पन्न हो।

सराक क्षेत्र एवं शेष भारत के परस्पर सम्मिलन हेतु विभिन्न बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए यह भावना बलवती हुई कि एक सराक संगोष्ठी का आयोजन किया जाए जिसमें सराक क्षेत्र की समाजिक, सांस्कृतिक, एंतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक पहलुओं पर शोधपूर्ण जानकारी प्राप्त की जाय जिससे यह क्षेत्र बुद्धिजीवी वर्ग, विद्वत्समाज, शोधार्थियों, पुरातत्त्ववेत्ताओं का आकर्षण केन्द्र बने और जैन पुरातत्त्व से सम्पन्न इस क्षेत्र में पुनः द्वादशांगवाणी की अनुगूँज व्याप्त हो।

पूज्य उपाध्याय श्री जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। गांधीनगर, दिल्ली की समाज ने इस रूपरेखा को क्रियान्वित करने का दायित्व संभाला। सहसंयोजन में डा० श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत एवं डा० नलिन शास्त्री, बोधगया (बिहार) की स्वीकृति के साथ ही प्रथम प्रपत्र देश भर के प्रख्यात मूर्धन्य विद्वानों, विश्वविद्यालयों के समाजशास्त्र, इतिहास विभागों के अध्यक्षों, पुरातत्त्ववेत्ताओं को प्रेषित किए गए जिसकी अनुशंसा भरी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई, साहू रमेशचन्द जी जैन कार्यकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देशक टाइम्स आफ इण्डिया दिल्ली की स्वीकृति ने तो मनोबल में अतिरिक्त वृद्धि की। त्रिदिवसीय सराक संगोष्ठी '96 की (11 फरवरी से 13 फरवरी 1996) घोषणा हुई। एक माह के भीतर ही 17 शोधलेख प्राप्त हुए जिनमें अनेक अछूते विशिष्ट विविध विषयों पर सामग्री प्राप्त हई। कई विश्वविद्यालयों का प्रतिनिधित्व संगोष्ठी में हुआ। 11 फरवरी को जैन टी० वी० ने ठीक 1 बजे खोज कार्यक्रम में सराक क्षेत्र पर वृत्तचित्र प्रसारित किया। श्वेताम्बर साधुओं का सानिध्य भी संगोष्ठी को प्राप्त हुआ। चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय मेरठ, रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, मगध विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, जीवार्जीराव विश्वविद्यालय ग्वालियर की प्रतिभागिता से संगोष्ठी का गौरव सहस्रगुणित हुआ।

अखिल भारतीय स्तर पर यह संगोष्ठी चर्चित हुई, शोध हेतु छात्र इस ओर आकर्षित हुए। शोध संस्थानों में सराक साहित्य को आमन्त्रित किया गया।

श्रोताओं से खचाखच भरा पाण्डाल भी स्वयं में कीर्तिमान था ही। पूज्य उपाध्याय श्री के प्रत्येक सत्र में आशीर्वाद ने इसे और प्रांजल बना दिया। संगोष्ठी की उपलब्धि तत्काल प्रतिफलित हुई, वहीं उपस्थिति श्रीपाल जैन जी ने एक लाख रुपये सराक क्षेत्र में मन्दिर बनाने हेतु ट्रस्ट को प्रदान किए सराकोत्थान समिति बनी यमुनानगर क्षेत्र के अध्यक्ष श्री किशोर जैन, श्री धनपाल, श्री मदनलाल जैन, श्री महेन्द्र जी जैन आदि उत्साही समाज सेवियों ने सराकोत्थान का संकल्प लिया।

सर्वविध गरिमापूर्ण इस संगोष्ठी की चर्चा प्रमुख समाचार पत्रों में रही। आयोजकों एवं व्यवस्थापकों ने सुन्दर अतिथि परम्परा को निर्वाह किया। संगोष्ठी आलेखों की स्मारिका का भी प्रकाशन अत्यन्तावश्यक समझा गया "सराक संगोष्ठी स्मारिका" के रूप में साक्षात् प्रस्तुतीकरण है।

यह संगोष्ठी और स्मारिका तो अध्यवसाय और सत् की ओर एक संकेत है। हम सब मिल जायें, सराक अपभ्रंश से पूर्ववत् श्रावक बने और हम श्रावक सराक न बनने पायें, इसलिए आवश्यक है दोनों के मध्य एक सेतु जिस पर ऐसा आवागमन हो जाए कि अलग-अलग पहचान एक हो.......हम एक ही हों......एक ही रहें।

संगोष्ठी से स्मारिका तक सभी महान् विभूतियों को नमन करना चाहूँगी जिनके सुझावों, मार्गदर्शन, उपस्थिति, सहयोग एवं आशीर्वाद की बारिशों में मैं तो सरोबार रहीं, भीगा जायें आपके मन भी और तमाम अपरिचित प्रदीलकाएं अवगुण्ठन खोल साज स्वर- लहरी बनी रहें। त्रुटियाँ सब मेरी ही हैं, आप प्रणम्य मेरा अबोध क्षम्य समझें। आपका प्यार स्वीकृति और प्रतिक्रिया के रूप में प्राप्त होगा यही विश्वास है। कारवां कभी थमे नहीं, गुरुचरणों में कोटिशः नमोऽस्तु।

श्रद्धावनत

डा० नीलम जैन

(सम्पादिका)

68, मिशन कम्पाउण्ड, सहारनपुर

पार्श्वनाथ निर्वाणदिवस

श्रावणशुक्लासप्तमी का मंगलमय दिवस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उमेश से उपाध्याय मुनि १०८ ज्ञानसागर :

सफरनामा एक अनेकान्तिक साधक का

अभीक्ष्ण ज्ञान की सम्पदा से सिक्त उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराजं का व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक ऐसे क्रान्तिकारी साधक की अनवरत साधना-यात्रा का वह अनेकान्तिक दस्तावेज है जिसने समय के नाट्य-गृह में अपने सप्तभंगी प्रज्ञान के अनेकों रंग विखेरे हैं। चम्वल के पारदर्शी नीर और उसकी गहराई ने मुरैना में वि० सं० २०१४ वैशाख सुदी दोयज को जन्मे बालक उमेश को पिच्छि-कमण्डलु की मैत्री के साथ अपने बचपन की उस बुनियाद को मजबूत कराया जिसने उस निर्बाध मार्ग का सहज, पर समर्पित पथिक बना दिया। शहर में आने वाले हर साधु-साध्वी के प्रति बचपन से विकसित हुए अनुराग ने माता अशर्फी बाई और पिता शान्ति लाल को तो हर पल सशंकित किया पर बालक उमेश का आध्यात्मिक अनुराग हर पल पल्लवित और पुष्पित होता रहा। और इसकी परिणति हुई सन् १९७४ में उस प्रतीक्षित फैसले से, जब किशोर उमेश ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार किया एवं दो वर्षों बाद, पाँच नवम्बर उन्नीस सौ छिहत्तर को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। उमेश से रूपान्तरित हुए क्षुल्लक गुणसागर ने बारह वर्षों तक आगम ग्रन्थों, साहित्य एवं भाषा का अध्ययन किया, युग के महान् सन्त आचार्य श्री विद्यासागर जी की पावन सन्निधि में तत्वज्ञान का पारायण किया तथा महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर इकत्तीस मार्च उन्नीस सौ अठासी को आचार्य सुमतिसागर जी महाराज से मुनि धर्म की दीक्षा ग्रहण की और तब आविर्भाव हुआ उस युवा, क्रान्तिदृष्टा तपस्वी का, जिसे मुनि ज्ञानसागर के रूप में युग ने पहचाना और उनका गुणानुवाद किया।

निर्ग्रन्थ रूप में प्रतिष्ठित इस दिगम्बर मुनि ने जहाँ आत्म-शोधन के अनेकों प्रयोग किये, साधना के नये मानदण्ड संस्थापित किये, उदात्त चिन्तन की ऊर्जस्वी धारा को प्रवाहमान कर तत्वज्ञान को नूतन व्याख्याओं से समृद्ध किया, वहीं पर अपनी करुणा, आत्मीयता और संवेगशीलता को जन-जन तक विस्तीर्ण कर भगवान महावीर की **सत्वेषु मैत्री** की अवधारणा को भी संवर्द्धित किया। मध्यप्रदेश की प्रज्ञान-स्थली सागर में मुनिराज का प्रथम चातुर्मास, तपश्चर्या की कर्मस्थली वना और यहीं से शुरु हुआ आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा का वह अथ जिसने प्रत्येक कालखण्ड में नये-नये अर्थ गढ़े और संवेदनाओं की समझ को साधना की शैली में अन्तर्लीन कर लिया।

आगामी वर्षों में मुनि ज्ञानसागर जी ने जिनवाणी के आराधकों से स्थापित किया एक सार्थक संवाद ताकि आगम ग्रन्थों में निबद्ध रहस्यों को सामान्य जनों तक बोधगम्य भाषा और शैली में सम्प्रेषित किया जा सके। सरधना, शाहपुर, खेकड़ा, गया, राँची, अम्बिकापुर, मेरठ, सहारन्पुर, मुजफ्फरनगर में विद्वत्संगोष्ठियों के आयोजन ने वहुत से अनुत्तरित प्रश्नों के जहाँ एक ओर उत्तर खोजे वहीं दूसरी ओर शोध एवं समीक्षा के लिये नये सन्दर्भ भी परिभाषित किये गये। अनुपलब्ध ग्रन्थों के पुनर्प्रकाशन की समस्या को इस ज्ञान-पिपासु ने समझा और सराहा। इस क्षेत्र में गहन अभिरुचि के कारण सर्वप्रथम वहुश्रुत श्रमण परम्परा के अनुपलब्ध प्रामाणिक शोध-ग्रन्थ, स्व० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा सर्जित साहित्य सम्पदा **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (चारों भाग)** के पुनर्प्रकाशन की प्रेरणा की, जिसे सुधी श्रावकों ने अत्यल्प समयावधि में परिपूर्ण भी किया। इतना ही नहीं, आधुनिक कालखण्ड में भुला दिये गये सन्तों एवं विद्वानों के कृतित्व से समाजको परिचित कराने का भी गुरुकार्य इन्होंने किया, जिसकी परिणतिस्वरूप आचार्य शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन से एक ओर विस्मृत से हो रहे उस अत्यन्त पुरातन साधक से समाज परिचित कराया जिसने सम्पूर्ण उत्तर भारत में दिगम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण परम्परा को उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अभिवृद्ध करने का गुरु-कार्य किया था तो दूसरी ओर सुप्रसिद्ध जैन दर्शन-विद् स्व० पं० महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य की स्मृति में एक विशाल स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा कर मात्र एक जिनवाणी-आराधक का गुणानुवाद ही नहीं किया प्रत्युत् नयी पीढ़ी को उस महान् साधक के अवदानों से परिचित भी कराया। इस तपःपूत ने वैचारिक क्रान्ति का उद्घोष किया इस आशा और विश्वास के साथ कि आम आदमी के समीप पहुँचने के लिये उसे उसकी प्रतिदिन की समस्याओं से मुक्ति दिलाने के उपाय भी संस्तुत करने होंगे। तनावों से मुक्ति कैसे हो, व्यसन मुक्त जीवन कैसे जिएँ, पारिवारिक सम्बन्धों में सौहार्द कैसे स्थापित हो तथा शाकाहार को जीवन-शैली के रूप में कैसे प्रतिष्ठापित किया जाए, आदि यक्ष प्रश्नों को बुद्धिजीवियों, प्रशासकों, पत्रकारों, अधिवक्ताओं शासकीय/अर्द्धशासकीय एवं निजी क्षेत्रों के कर्मचारियों व अधिकारियों, व्यवसायियों, छात्रों-छात्राओं आदि के साथ परिचर्चाओं, कार्य शालाओं, गोष्ठियों के माध्यम से उत्तरित कराने के लिये एक ओर एक रचनात्मक संवाद स्थापित किया तो दूसरी ओर श्रमण संस्कृति के नियामक तत्वों एवं अस्मिता के मानदण्डों से जन-जन को दीक्षित कर उन्हें जैनत्व की उस जीवन-शैली से भी परिचित कराया जो उनके जीवन की प्रामाणिकता को सर्वसाधारण के मध्य संस्थापित करती है।

इस खोजी साधक ने प्रेम और करुणा के व्यावहारिक प्रयोग किये और कंक्रीट संस्कृति से दूर पहुँचे झारखण्ड के उन अरण्यों में जहाँ बिरसा और मुण्डा जाति के आदिवासियों के साथ लाखों की तादाद में बसते हैं अत्यन्त पुरातन जैन श्रावक जिन्हें समय की शिला पर पड़ी धूल ने सिर्फ नाम का अपभ्रंश कर उन्हें सराक ही नहीं बना दिया प्रत्युत् उन्हें उनके कुल-गौरव पार्श्व प्रभु की परम्परा को भी विस्मृत कराने पर मजबूर कर दिया। इन भूले-बिसरे भाइयों को बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में अलग-थलग जीवन जीने के स्थान पर सम्पूर्ण देश की श्रमण धारा से जोड़ने के लिये अनेकों कल्याणकारी योजनाएँ संचालित कीं जिनमें रघुनाथपुर एवं अनाईजामाबाद के पुनर्वास केन्द्र, पुराने जीर्ण-शीर्ण जिनालयों का जीर्णोद्धार, सुदूर अंचलों में नये जिनालयों का निर्माण, तकनीकी शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, रोजगार के लिये उपस्करों का प्रबन्ध, छात्रवृत्तियों का वितरण, कुशल बेरोजगारों को रोजगार एवं नौकरियों की उपलब्धता एवं इन सभी के सफल संचालन के लिये सुधी जनों को प्रेरित कर ट्रस्ट के माध्यम से समस्त गतिविधियों को कार्यान्वित कराने की प्रेरणा की है। यही कारण है कि इस साधनापूत से प्रभावित हो जहाँ एक ओर श्री मोतीलाल बोरा, श्री अजितसिंह, श्री नारायण दत्त तिवारी, श्री साहिब सिंह वर्मा, श्री इन्दर सिंह नामधारी आदि राजनेताओं ने दर्शन लाभ कर आशीर्वाद प्राप्त किये हैं, वहीं दूसरी ओर डॉ० कृष्ण कुमार नाग, श्री राजेन्द्र यादव, श्री अरविन्द जैन, डॉ० नेमीचन्द आदि बुद्धिजीवियों, पत्रकारों ने एवं साहू अशोक कुमार जैन, साहू रमेशचन्द्र जैन, श्री पूनम चन्द गंगवाल, श्री उम्मेदमल पाण्ड्या, श्री निर्मल कुमार सेठी आदि प्रमुख उद्योगपतियों ने भी पूज्य गुरुदेव से मंगल आशीष प्राप्त किये हैं।

पूज्य उपाध्याय श्री १०८ उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज का जीवन क्रान्ति का श्लोक है, साधना और मुक्ति का दिव्य छन्द है तथा है मानवीय मूल्यों की वन्दना एवं जन-चेतना के सर्जनात्मक परिष्कार एवं उसके मानसिक सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य के विकास का वह भागीरथ प्रयत्न जो स्तुत्य है, वंदनीय है और है जाति, वर्ग, सम्प्रदाय भेद से परे पूरी इन्सानी जमात को समर्पित एक छोटा पर बहुत स्थिर और मजबूती भरा कदम। निःसन्देह यह होगा आने वाली पीढ़ी के लिये एक प्रकाश-स्तम्भ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

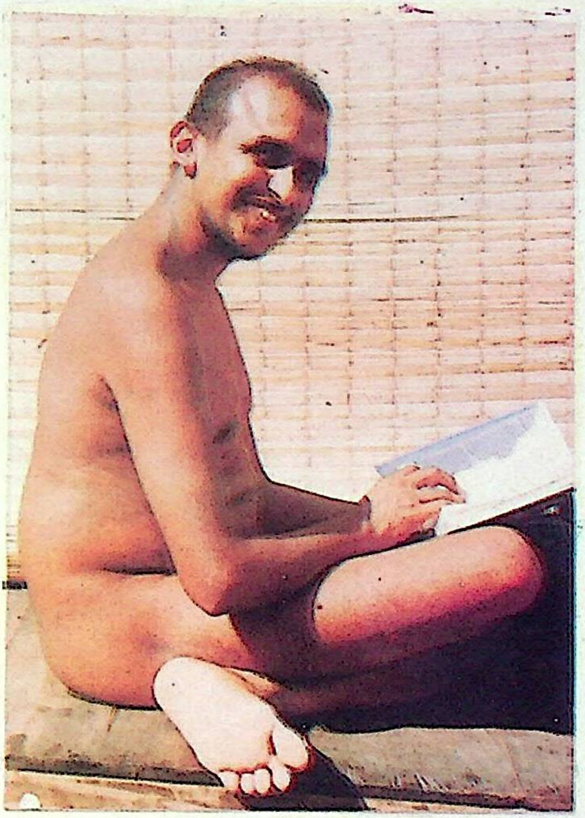

सराकोद्धारक परमपूज्य
उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

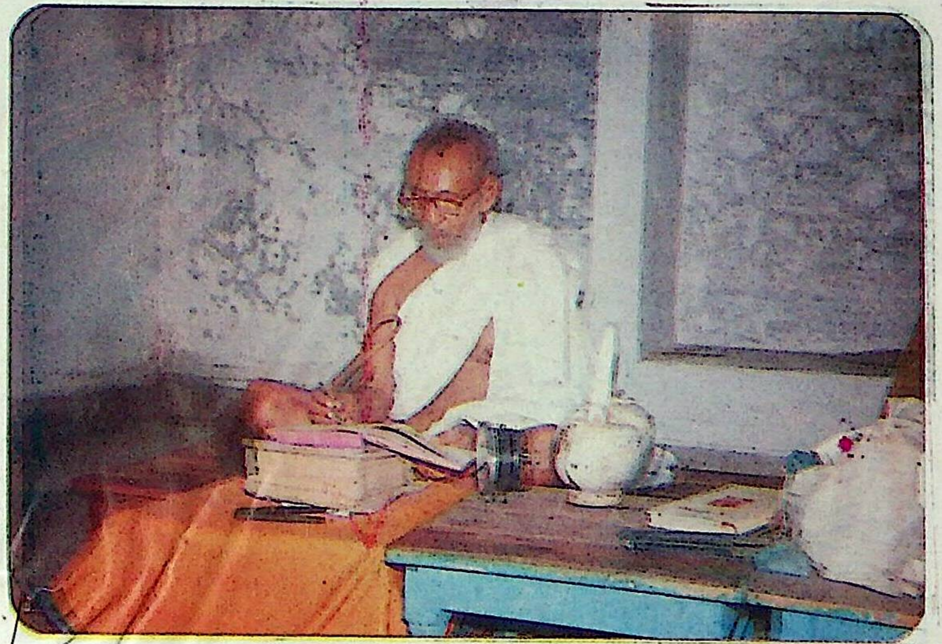

पूज्य मुनि श्री वर्धमानसागर जी
का क्षुल्लक अवस्था का चित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सुमतचन्द जैन

श्रीमती रतन देवी जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4630

संगोष्ठी प्रतिवेदन

प्रथम ऐतिहासिक सराक विद्वत् संगोष्ठी

बिहार, बंगाल, उड़ीसा में रहनेवाले एवं भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का पालन करने वाले सराकों (श्रावकों) के धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक पुनरुत्थान की दिशाओं को निर्देशित करने एवं बिछुड़े भाईयों को स्वयं में मिलाकर जैन समाज को संगठित करने की दृष्टि से भारतवर्ष में प्रथम बार अहिंसक जनजाति सराक विषयक संगोष्ठी का भव्य आयोजन परमपूज्य सराकोद्धारक उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी एवं मुनि 108 श्री वैराग्यसागर जी के सानिध्य में आठ सत्रों में सम्पन्न हुआ। इसमें देश के मूर्धन्य विद्वानों, इतिहासविदों एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं का शोधलेख वाचन हुआ। इसकी संक्षिप्त आख्या निम्नवत् है–

प्रथम सत्र (11 फरवरी, 1996, समय-प्रातः 10-00 बजे से 12-00 बजे)

सराक विद्वत् संगोष्ठी का प्रथम सत्र परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनि 108 श्री वैराग्यसागर जी महाराज के पुनीत सानिध्य में साहू रमेशचन्द जी दिल्ली की अध्यक्षता में श्री मामचन्द जी जैन एवं श्री सुरेशचन्द जैन (जयचन्द्रा बिजली वालों) के ध्वजारोहण से प्रारम्भ हुआ। दीप प्रज्वलन श्री सुरेशचन्द जैन सपना गारमेण्ट्स ने किया तथा विशिष्ट अतिथि श्री सुरेन्द्रपाल जैन, प्रधान शंकर नगर जैन समाज रहे। इस सभा का शुभारम्भ डा० अभय प्रकाश जैन ग्वालियर के मंगलाचरण से हुआ।

समागत विद्वानों का आयोजन समिति द्वारा फाइल भेंट कर व बैज लगाकर स्वागत किया गया। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् के महामन्त्री डा० जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर द्वारा सभी विद्वानों का परिचय कराया गया। संयोजिका डा० नीलम जैन द्वारा संगोष्ठी के उद्देश्य को प्रस्तुत किया गया। चौ० च० वि० वि०, मेरठ से कुलपति महोदय के प्रतिनिधि के रूप में पधारे डा० गोविन्दजी ने सराकों की प्राचीनता को रेखांकित करते हुए बताया कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक कबीर में लिखा है कि कबीर पर सराक योगियों का प्रभाव था तथा सराक एक अहिंसक एवं शान्तिप्रिय जाति है। इनके विश्वास व मान्यतायें जैनों से मेल खाती हैं।

उन्होंने सराकों पर शोध कार्य को भी प्रारम्भ कराने का वचन दिया। डा० धनप्रकाश मिश्र जो श्रावकाचार पर वर्तमान में शोधकार्य करा रहे हैं, ने कहा सराकों को उल्लिखित करना आवश्यक है। न्यायमूर्ति डा० सुरेशचन्द्र मुखर्जी कुलपति मगध विश्वविद्यालय बोधगया बिहार ने अपना लिखित सन्देश डा० नलिन शास्त्री जी बोधगया के माध्यम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से पेश किया जिसको डा० नलिन शास्त्री ने अपने शोधपत्र सराक एक समाजशास्त्रीय अध्ययन में पढ़कर सुनाया।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा के सराक क्षेत्र के सर्वेक्षण, पुरातत्त्व एवं इतिहास के आधार पर डा० नीलम जैन द्वारा लिखित पुस्तक "सराक क्षेत्र" का भी लोकार्पण साहू रमेशचन्द जैन टाइम्स आफ इण्डिया, दिल्ली द्वारा किया गया। साहू रमेशचन्द जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में सराकों को वीर श्रावक कहते हुए उनके संघर्ष एवं जीवन्तता की प्रशंसा की तथा उनको जैन समाज से मिलाकर संगठन को मजबूत करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने सराकों को उस क्षेत्र का सांस्कृतिक प्रहरी बताया। पूज्य उपाध्याय श्री ने अन्त में अपने मंगलाशीष में सराकों को जैन समाज का अभिन्न अंग बताते हुए अपने सराक क्षेत्र के प्रवास में आयी अनेक कठिनाइयों को बताया तथा उन्होंने कहा कि यदि साधु और श्रावक वहाँ जाता रहेगा तथा जैन समाज अपनी इस पुण्यस्थली के विकास में संलग्न रहेगी तो जैन समाज को ही नहीं भारतीय संस्कृति को भी एक नया बल मिलेगा। सराक अहिंसक हैं, सात्त्विक हैं, मन-वचन और कर्म से शान्तिप्रिय हैं, संस्कारशील हैं। हमें इन्हें संस्कृति के जीवन्त अवशेष ही समझना चाहिए।

द्वितीय सत्र (मध्यान्ह 2-00 बजे से 4-30 बजे तक)

पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज ससंघ के सानिध्य में श्री राजेन्द्र जैन सराक के मंगलाचरण से इस सत्र का प्रारम्भ हुआ। सत्र के अध्यक्ष डा० सतपाल नारंग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली एवं सत्र प्रवर्तक डा० नलिन शास्त्री बोधगया, बिहार रहे। इस सत्र में डा० सूरजमल जैन द्वारा "सराक क्षेत्र" एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, डा० वेदरत्न, प्रमुख सलाहकार एन० सी० आर० टी० पब्लिकेशन ने "सराक एवं शाकाहार", श्रीमती कान्ति जैन ग्वालियर ने "सराक क्षेत्र सामाजिक रीति-रिवाज" तथा सुश्री माधुरी जैन ने "सराक क्षेत्र की लोककला" का चित्रप्रदर्शन सहित शोधपत्र वाचन किया। इस सत्र में स्थानक वासी साधु मुनि श्री कमलेश जी एवं मुनि श्री महेश जी की भी पावन उपस्थिति उल्लेखनीय रही। मुनि श्री कमलेश ने अपने उद्बोधन में एकता पर बल देते हुए सराकों को भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बताया। उपाध्याय श्री ने भी विघटन को समाज के विकास में बाधक बताते हुए एकता एवं सर्वधर्म सम्मान और वैचारिक सहिष्णुता को ही जैन समाज के स्थायित्व एवं प्रगति के लिए उपयोगी बताया। उन्होंने सराकों की ऐतिहासिक परम्परा एवं लोककला के चित्रों को देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा यह तथ्य एवं प्रमाण साक्षी है कि सराक मानसिक एवं आर्थिक दृष्टि से किसी समय परमसमृद्ध एवं पूर्णतया विकसित थे।

रात्रिकालीन सत्र में डा० श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत एवं डॉ० जयकुमार जैन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुजफ्फरनगर ने प्रवचन एवं शान्तिसागर स्वाध्याय द्वारा मंचित "शील का प्रभाव" नाटक सम्पन्न हुआ।

तृतीय सत्र (दिनाँक 12-02-96, 8-30 बजे से 11-00 बजे तक)

परमपूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी एवं मुनि 108 श्री वैराग्यसागर जी महाराज के पावन सामीप्य में इस सत्र का शुभारम्भ वासुपूज्य महिला मण्डल की बहनों के मंगलाचरण से हुआ। सत्राध्यक्ष डा० नन्दलाल जैन रीवाँ एवं सत्रप्रवर्तक रहे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् के महामन्त्री डा० जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर।

इस सत्र में डा० रमेशचन्द जैन बिजनौर द्वारा "बंगाल व बिहार का पुरातत्त्व वैभव, डा० अशोक जैन ग्वालियर द्वारा "सराक क्षेत्र में उपलब्ध वनस्पतियों के आधार पर आर्थिक विकास", डा० जयकुमार जैन द्वारा "सराक क्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव", डा० अभयप्रकाश जैन द्वारा "जैन संस्कृति की धरोहर क्षेत्र सराक क्षेत्र" शोधपत्रों का वाचन हुआ। सत्रावसान पर पूज्य उपाध्याय श्री ने अपने मंगलाशीष मे कहा कि विद्वानों की शोधपूर्ण सामग्री से सराक क्षेत्र के अतीत के गौरव का एक स्वर्णिम पृष्ठ सामने आया है। शीघ्र ही उनके बहुमुखी विकास के लिए आर्थिक योजनायें क्रियान्वित होनी चाहिए। उन्होंने जैन आचार-विचार से विमुख होते हुए युवाओं के आचरण पर भी खेद प्रकट करते हुए कहा कि यदि यही स्थिति रही तो एक दिन वह भी आयेगा कि जब जैनियों को भी उनके आचार-विचारों को स्मरण कराने हेतु गोष्ठी करानी पड़ेगी।

चतुर्थ सत्र (मध्यान्ह 2-00 बजे से 4-00 बजे तक)

दिनाँक 12-02-96 को संसघ पू० उपाध्याय श्री के सानिध्य में चतुर्थ सत्र का प्रारम्भ श्री गौरांग सराक जैन पं० बंगाल के मंगलाचरण से हुआ। इस सत्र की अध यक्षता श्री गोकुलप्रसाद जैन दिल्ली तथा संचालन डा० नीलम जैन, सहारनपुर ने किया। इस सत्र में ब्र० राकेश जी जबलपुर का शोधपत्र "सराक या सराग", डा० मदनमोहन बजाज द्वारा "सराक और शाकाहार", श्री हृदयराज जैन–"सराक क्षेत्र का यात्रा वृत्तान्त" तथा सराक क्षेत्र सम्बन्धी अनेक जिज्ञासाओं का पूज्य उपाध्याय श्री जी द्वारा समाधान किया गया। सत्रान्त में पूज्य श्री ने कहा कि सराक जागरूक होकर अपने संस्कार तो बचा गए अब तो आवश्यकता है उनके संस्कार स्थायी रहें और वे जैन कहलायें, समाज उन्हें स्वीकारें। रात्रि में 7 बजे डा० श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत तथा डॉ० जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर का प्रवचन तथा जैन बालाश्रम की बालिकाओं द्वारा मनोहारी सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ।

पंचम सत्र (दिनाँक 13-02-96, प्रातः 8-30 बजे से 10-30 बजे तक)

पूज्य उपाध्याय श्री के संसघ पावन सानिध्य में इस सत्र का शुभारम्भ पं० टीकमचन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी के मंगलाचरण से हुआ। इसके अध्यक्ष पं० निर्मल जैन सतना रहे। संचालन डा० सुशील कुमार जैन कुरावली ने किया। इस सत्र में डा० श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत द्वारा ''पं० बाबूलाल जैन जमादार का सराकोत्थान में योगदान", डा० यू० के० जैन द्वारा "सर्वेक्षण के आधार पर सराक क्षेत्र के आर्थिक विकास का प्रारूप", डा० गोकुल प्रसाद जैन द्वारा "सराक संस्कृति : एक समीक्षात्मक अध्ययन'' शोधपत्रों का वाचन हुआ।

पं० निर्मल जैन ने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में अब तक किए गए सराक क्षेत्र में कार्यों की निरन्तरता न रहने का प्रमुख कारण बताते हुए कहा आज तक जिस भी साधु ने उधर जाकर उपाध्याय श्री जी से पूर्व कार्य किया वह कार्य बस उन साधु के भक्तगणों तक सीमित रहा। वर्तमान में पूज्य उपाध्याय श्री जी ने सराक क्षेत्र की विपरीत परिस्थितियों में भी अपने चरित्र एवं साधना की रक्षा करते हुए सराक क्षेत्र में जागृति का शंखनाद किया, उन्हीं के प्रयासों से आज सराकों की ओर पूरे जैन समाज का ध्यान आकर्षित हुआ। हम सबका दायित्व है अब सावधान रहकर अपने संगठन को मजबूत बनाए तथा पूज्य श्री द्वारा प्रारम्भ किए गये इस कार्य को अपना समझें।

अन्त में उपाध्याय श्री ने आलेखों की विषय-सामग्री की प्रशंसा करते हुए विद्वानों को सराक क्षेत्र में जाकर धर्म प्रभावना के कार्य करने का निर्देश दिया तथा कहा जो कार्य मर्यादा के कारण साधुराज नहीं कर पा रहे वह विद्वानों को आगे बढ़ाना चाहिए।

षष्ठ सत्र (दिनाँक 13-02-96 मध्यान्ह 2 बजे से 4 बजे तक)

संगोष्ठी के इस अन्तिम सत्र में परमपूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी एवं मुनि 108 श्री वैराग्यसागर जी महाराज के पावन सानिध्य में इस समापन सत्र का मंगलाचरण प० बंगाल, बिहार, उड़ीसा से पधारे सराक बन्धुओं ने सामूहिक रूप से किया। अध्यक्ष रहे श्री पारसदास जैन (स० सम्पादक नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली) इस सत्र का प्रवर्तन श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत ने किया। इस सत्र में बंगाल, बिहार, उड़ीसा से आए हुए अनेक युवाओं ने यमुना पार जैन समाज के अध्यक्ष श्री किशोर जैन द्वारा संयोजित "प्रश्नमंच" में सभी धार्मिक प्रश्नों का उचित उत्तर दे देकर सभी को रोमांचित कर दिया।

आयोजन समिति ने सभी विद्वानों को शाल व प्रतीकचिन्ह देकर भावपूर्ण विदाई दी। डा० नीलम जैन द्वारा लिखित "सराक क्षेत्र" अंग्रेजी अनुवाद का भी लोकार्पण श्री पारसदास जी जैन द्वारा हुआ। श्री पारसदास जी ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में सराक क्षेत्र को श्रावकों का क्षेत्र तथा जैन संस्कृति का प्राचीन स्थल बताते हुए कहा सराक क्षेत्र को विकसित करना जैन संस्कृति को विकसित करना है। हमें यह समझना चाहिए कि हम सराकों का नहीं अपना उत्थान कर रहे हैं। अपना संगठन मजबूत कर रहे हैं। गांधीनगर जैन समाज के मंत्री श्री मदनलाल जी ने सभी समागत विद्वानों एवं अतिथियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का आभार प्रकट किया तथा शोधलेखों की स्मारिका को सम्पादित कराने का दायित्व संयोजिका डा० नीलम जैन को प्रदान किया।

पूज्य उपाध्याय श्री जी ने भी सभी विद्वानों के श्रम की सराहना की और उन्हें प्रेरित किया कि विद्वानों को केवल एक ही शोधार्थिका प्रस्तुत करके अपने कर्त्तव्य की इति श्री नहीं समझ लेनी है, अपितु बराबर अपनी ज्ञानाहुति इस महायज्ञ में देते रहनी है। आयोजकों को भी उपाध्याय श्री ने अपना आशीर्वाद प्रदान किया और कहा लक्ष्मीपुत्रों और सरस्वतीपुत्रों का सही संगम ही सराक क्षेत्र को उसका अतीत प्रदान कर जैनत्व की पूज्यस्थली बना सकता है।

सभी ने एक स्वर में परमपूज्य उपाध्याय श्री जी के चरणों में यथाशक्ति समर्पण का संकल्प लिया। महिलाओं ने भी सराक क्षेत्र में कार्य करने का दायित्व स्वीकार किया। श्रीपाल जैन ने तत्काल एक मन्दिर निर्माण की घोषणा भी की।

उन्होंने सराकों पर शोधकार्य को भी प्रारम्भ कराने का वचन दिया। डा० धनप्रकाश मिश्र जो श्रावकाचार पर वर्तमान में शोधकार्य करा रहे हैं, सराकों को उल्लिखित करना आवश्यक बताया था। न्यायमूर्ति डा० सुरेन्द्र मुखर्जी मगध विश्वविद्यालय एवं नालन्दा विश्वविद्यालय ने भी अपना लिखित संदेश डा० नलिन शास्त्री जी बोधगया के माध्यम से प्रेषित किया। जिसका डा० नलिन शास्त्री ने अपने शोधपत्र "सराक एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" का इस सत्र में वाचन किया।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा के सराक क्षेत्र के सर्वेक्षण पुरातत्त्व एवं इतिवृत्त के आधार पर डा० नीलमजैन द्वारा लिखित पुस्तक और पूज्य उपाध्याय श्री की मंगल प्रेरणा एवं आशीर्वाद से आयोजित इस प्रथम ऐतिहासिक "सराक विद्वत् संगोष्ठी" की सराहना सभी ने मुक्त कंठ से की और कुल मिलाकर यह संगोष्ठी श्रोताओं पर अपना अमिट प्रभाव अंकित करने में सफल रही। सराक क्षेत्र विषयक जानकारी से आये सांस्कृतिक समर्पण के भाव सभी के मुख पर स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहे थे। एक ही मंच पर सराकों और उत्तर भारत के जैन समाज का सम्मेलन मंत्रमुग्ध कर गया। अनेक बन्धुओं ने तत्काल 21 फरवरी, 1996 को राजड़ बोदमा (पश्चिमी बंगाल) सराक क्षेत्र में होने वाली वेदी प्रतिष्ठा में भी जाने का मन बनाया और इस प्रकार स्पष्ट आभास हुआ कि अब सराक क्षेत्र और शेष जैन समाज के बीच इस गोष्ठी द्वारा एक पुल का निर्माण हो गया है।

संयोजिका
डा० नीलम जैन
सहारनपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक : परिचय एवं जीवनशैली

डा० रूबी जैन
सहारनपुर

'सराक' शब्द श्रावक का अपभ्रंश या विकृत रूप है। श्रावक का अर्थ है–श्रद्धावान्, विवेकशील और क्रियावान्। श्रावक के अन्य अपभ्रंश रूप, सराग, सरावगी भी हो सकते हैं। देशभेद के कारण इनके उच्चारण में अन्तर आ गया है।

'सराक' जैन समाज की एक पिछड़ी प्रजाति है जो पिछले प्रायः दो हज़ार वर्षों से देश में व्यवस्थित शासन के अभाव, अराजकता, नैतिक अस्थिरता आदि परिस्थितियों में धर्मद्रोहियों से बचने के लिए जंगल में भटकती रही और अनुकूल परिस्थिति आने पर आदिवासी अवस्था में प्रकाश में आई। ये वे सराक या श्रावक थे जो अशोक की कलिंग विजय के क्रम में मारे गये श्रावकों के अतिरिक्त जीवित रह गये थे।

केरल की कुछ आदिमजातियों के अध्ययन से पता चलता है कि वे किसी समय जैन थे या जैनधर्म से संबंधित प्रदेश से वहाँ आकर बस गये थे। सराक जाति भी किसी अन्य स्थान से आकर झारखण्ड या छोटानागपुर में आ बसी।

किसी समय राँची क्षेत्र में नागवंशी राजाओं का शासन था। उनका शासनकाल महाभारत युद्ध के बाद से पार्श्वनाथ के युग तक माना जा सकता है। तत्कालीन किलों के भग्नावशेष अभी भी राँची के निकट देखे जा सकते हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी नागवंश में जन्मे थे। हज़ारीबाग राँची क्षेत्र में सराक जाति के कुलदेवता पार्श्वनाथ का प्रभाव हैं

ऐसी भी जनश्रुति है कि 11वीं, 12वीं सदी में तत्कालीन शासकों के धार्मिक अत्याचारों के कारण राजस्थान के श्रावक इस क्षेत्र में आये थे। यहाँ आकर उन्होंने खेती करना आरंभ किया। कालान्तर में वे ही सराक कहलाने लगे। वैसे सराक जाति का आगमन मुंडा जाति के बाद ही हो चुका था। मुण्डारी भाषा के शब्दकोश में 'सराक' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है–"Sarak" the Manjhi Caste, a corrupt form of the Jain and "Sravak". इससे यह स्पष्ट होता है कि मुण्डा और सराक जाति के घनिष्ठ संबंध हैं और सराक जाति बहुत प्राचीन है।

सराक पार्श्वनाथ के तीर्थकाल के प्राचीन श्रावकों की वंशपरम्परा के उत्तराधिकारी हैं, जो बंगाल, बिहार और उड़ीसा के लगभग पंद्रह ज़िलों में निवास करते हैं और जिनकी संख्या लगभग पन्द्रह लाख है। शिक्षा-दीक्षा के अभाव में प्रायः ये जैन समाज से कटकर आदिवासी और जनजाति की कोटि में आ गये, किन्तु आचरण से इन्हें जैन कहा जा सकता है, क्योंकि ये पूर्णतः शाकाहारी और अहिंसावादी हैं। कुछ अन्य प्रान्तों में भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे लोग हैं जो अपने आपको जैन नहीं कहते किन्तु उनके संस्कार जैनों के ही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इन्हें बलात् धर्मपरिवर्तन करना पड़ा है और जो जैन संस्कार नहीं छोड़ सके। अभी भी ऐसी पूरी जातियाँ प्रकाश में नहीं आई हैं, फिर भी वर्तमान खोज के अनुसार तमिलनाडुके नयनार, उत्तराखण्ड के डिमरी, उड़ीसा के रंगिया और मेदिनीपुर के सद्गोप इसी प्रकार के हैं क्योंकि इस प्रान्त के जैन लोग अपने तीर्थंकरों और मुनियों को नयनार ही कहते हैं। उनके प्राचीन जैन साहित्य में अर्हन्त मन्दिर को नयनार मन्दिर कहा गया है।

उत्तरप्रदेश में एक डिमरी जाति रहती है। यह संभवतः दिगम्बरी का विकृत रूप है। उनके संस्कार जैनों की तरह ही हैं क्योंकि डिमरी जाति के लोग आलू आदि कन्द नहीं खाते तथा रात्रिभोजन नहीं करते।

उड़ीसा में ऐसी कई जातियाँ हैं जो पहले जैन थीं। इनमें जुलाहे, रंगणी जुलाहे, सराक, मंजिनाथ, अलेखी आदि जातियाँ हैं। बिहार में इस प्रकार की जातियों में जथरिया, भूमिहर और सराक हैं। बंगाल में सराक हैं तथा मेदिनीपुर में सद्गोप। सबसे अधिक संख्या सराक जाति की है। सराक पूर्णतः शाकाहारी होते हैं। ये पाँच उदुम्बर फल, प्याज, आलू, गोभी नहीं खाते, रात्रिभोजन नहीं करते तथा पानी छानकर पीते हैं। जीवरक्षा के प्रति ये विशेष सतर्क रहते हैं।

बंगाल के मानभूम ज़िले में सराकों की अच्छी संख्या है। इसी ज़िले में ब्राह्मणों का एक वर्ग अपने को महावीर का वंशज कहता है। सराक जाति से महावीर के इन वंशजों का संबंध भी माना जा सकता है।

पुरी के गजेटियर 1890-1900 की सर्वे रिपोर्ट में कहा गया है–"The Saraks are an archaic community" और उन्होंने जुलाहे का व्यवसाय अपना लिया है, फिर भी वे पार्श्वनाथ को अपना देवता मानते हैं। वर्ष में एक बार वे जैन तीर्थस्थान खण्डगिरी जाते हैं और वहाँ धार्मिक चर्चा के अतिरिक्त पार्श्वनाथ की स्तुति में यह भजन गाते हैं–

तुमि देखि जिनेन्द्र देखिल पातिक बोलाय
प्रफुल्ल हलकाय
सिंहासन छत्र आछे, चामर आछे कोटा
दिव्यदेह केमन आछे किया शोभाय कोटा

इस स्तुति से सराकों की प्राचीनता और पार्श्वनाथ की परम्परा का होना सिद्ध होता है।

भगवान महावीर ने पार्श्वनाथ की परम्परा को आगे बढ़ाया था। वहाँ के लोगों ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका सम्मान किया था। इसीलिए सराक क्षेत्र में पार्श्वनाथ के साथ-साथ महावीर की भी मूर्तियाँ पाई जाती हैं। उन्होंने अपने एक क्षेत्र का नाम ही वर्धमान रख दिया। पश्चिमी बंगाल के निकटस्थ स्टेशन का नाम 'बर्दवान' इसी का विकृत रूप है।

सराकों का दैनिक आचार-व्यवहार :

सराक जाति के लोग ब्राह्ममुहुर्त्त में उठते हैं और णमोकार मंत्र पढ़ते हैं। मटके में पानी छानकर रखते हैं तथा प्रत्येक बर्तन को ढककर रखते हैं। महिलाएँ बिना स्नान किये चौके में प्रवेश नहीं करतीं। चूल्हे तथा उसके आसपास की दीवार को झाड़ने के बाद ही वे चूल्हा जलाती हैं, ताकि किसी जीव का घात न हो जाये। चौके में पहनने वाले उनके वस्त्र अलग होते हैं। वृक्षों में आये पहले फल को वे मंदिर में चढ़ाते हैं। बाईस अभक्ष्य पदार्थों का वे प्रयोग नहीं करते। बासी भोजन नहीं करते। जीवरक्षा की दृष्टि से गर्म तवा ज़मीन पर नहीं रखा जाता तथा गर्म जल नाली में नहीं डाला जाता। चूल्हे पर तवा चढ़ाने के बाद पहले गाय, कुत्ते या झाडू-बुहारू करनेवाली के लिए रोटी बनाई जाती है। अतिथि को ये देवतातुल्य मानते हैं। इन्हें पूर्ण स्वच्छता का अभ्यास होता है। सूतक-पातक का इनके यहाँ पूरी तरह ध्यान रखा जाता है। सूतक दस दिन का और पातक तेरह दिन का माना जाता है। विवाह संबंध अपनी ही जाति में करते हैं। पौष माह और चैत्रमाह में सीताफल, शरीफ़ा, कद्दू नहीं खाया जाता तथा माघ के महीने में लौकी नहीं खाई जाती। ये अशिक्षित पर शान्त नागरिक माने जाते हैं। जो सभी से प्रेम करते हैं।

सराक लोग अपने नाम के आगे माँझी, मण्डल, महापात्र, सान्तरा, महात्र, आहंबुद्धि, प्रामाणिक, वैशाख, राउत, नायक, निशंक, लामक, सिंह, पात्र, वैष्णव, चौधरी, सेनापति आदि लिखते हैं। कुछ लोग आचार्य, सराक, अधिकारी, रंगणी भी लिखते हैं।

सराक जाति के गोत्र चौबीस तीर्थंकर के नाम पर होते हैं जैसे—आदिदेव, शांतिदेव, गौतम, धर्मदेव, शाण्डिल्य, काश्यप, भारद्वाज, क्षेमदेव, वत्सराज, गार्गी आदि। कुछ के गोत्र ऋषभदेव, जिनदेव, अनंतदेव, ब्रह्मदेव, पाराशर भी मिलते हैं। ये भगवान पार्श्वनाथ के अलावा भगवान महावीर को भी अपना कुलदेवता मानते हैं। राँची, सिंहभूम ज़िले में सराक दो भागों में विभाजित हैं—मूलसराक और सिकरियासराक। आज भी यहाँ के सराक ऋषभदेव स्वामी के बताये मार्ग पर चलते तथा कृषिकर्म करते हैं। बिहार, बंगाल, उड़ीसा में सराक जाति के चार सौ गाँव हैं। राँची के कई गाँवों में सराकों का बाहुल्य है। उड़ीसा के सराक रंगिया कटक ज़िले के 51 गाँवों में रहते हैं।

सराक क्षेत्र अर्थात् बिहार, बंगाल, उड़ीसा और उनके परवर्ती क्षेत्रों में एक लम्बी अवधि से जैनधर्म का प्रभाव रहा है। गुप्तकाल में यहाँ अनेक विहार एवं देवायतन होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के प्रमाण मिलते हैं। चीनी यात्री हेनसांगने छठी शताब्दी में इस क्षेत्र की यात्रा के दौरान यहाँ अनेक जैनमन्दिर, जैनमुनि एवं जैनवस्तियाँ देखीं।

प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सराक लोगों को शिक्षा-दीक्षा, अपने धर्म एवं समाज से प्रायः वंचित होना पड़ा किन्तु इस समय जैन समाज अपनी इस शाखा को मजवूत करने के लिए प्रयत्नशील है और सराकों के विकास के लिये कई कार्यक्रम तय कर रहा है।

संप्रति विहार के सराक क्षेत्र में पुरुषों की शैक्षणिक स्थिति सुधर रही है, पर स्त्रीशिक्षा प्रायः नगण्य है। व्यवसाय की दृष्टि से ये वुनकर, खेतिहर, श्रमिक, किसान, कुम्हार, राजमिस्त्री, शिल्पी, चर्मशिल्पी, केशप्रसाधनशिल्पी, दर्जी आदि का काम कर रहे हैं।

सरकारी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अव सराकों को भूमिसंरक्षण, कृपिक्षेत्र, वागवानी, वानिकी क्षेत्र, पशुपालन, शिक्षाक्षेत्र, महिला कल्याण उद्योग, समाज कल्याण क्षेत्र, विशेष कल्याण क्षेत्र (नेत्रहीन, अन्तर्जातीय विवाह, दंगापीड़ित आदि) जनस्वास्थ्य क्षेत्र आदि का प्रशिक्षण देने की योजना है।

चूँकि सराक अभी भी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े हुए हैं, इसलिए कुछ समाज-सुधारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और वे सरकारी विकास योजनाओं के अतिरिक्त अपने प्रयासों से सराकों को जैन समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहते हैं। इसके लिये वे मुनियों के चातुर्मास साधुजनों के साथ यात्राएँ, सराक सम्मेलन, सराक विद्वद् संगोष्ठी करके उन्हें जागरूक और कर्त्तव्यशील बनाना चाहते हैं। ऐसी आशा की जा सकती है कि सराक समुदाय भविष्य में जैनधारा का महत्त्वपूर्ण अंग बन सकेगा।

सराक क्षेत्र में पर्याप्त जिन मन्दिरों का निर्माण, धार्मिक शिक्षण संस्थान आदि की व्यवस्था के साथ सराकों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति लाने का प्रयास भी किया जा रहा है। सराकों को आर्थिक दृष्टि से समुन्नत करने के लिए सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के लिए बनाई गई योजनाओं के अनुसार कृषि और वानिकी का कई तकनीकों से विकास किया जा रहा है तथा लघु उद्योगों को स्थापित किया जा रहा है।

शिक्षा के द्वारा उनमें आत्मवोध उत्पन्न करना है, तभी सराक जाति अपने खोए हुए स्थान को पाने में समर्थ हो सकती है।

सराक लोककला :

सराक प्रजाति में धार्मिक विश्वास, आस्था और क्रियाओं के आकार अंकन और विभिन्न रंग मिलते हैं जो रचनात्मकता की विरासत के रूप में दिखाई देते हैं। यह उनकी स्वतन्त्र जनजातीय पहचान है। सराक संस्कृति के प्रतीक भी वहाँ की लोककला में मिलते हैं, उन्हें देखकर सराक संस्कृति की संवेदनशीलता, सुसंस्कार और अर्जित अस्मिता का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पता चलता है। तत्कालीन समाज की झाँकी-आज भी बिहार, उड़ीसा और बंगाल के अंचलों में देखने को मिलती है।

आर्थिक रूप से यद्यपि सराक क्षेत्र पिछड़ा हुआ है फिर भी मांडनकला एवं चित्रों में सराक संस्कृति की भावव्यंजना का अद्‌भुत सौन्दर्य मिलता है। लोककला शैली में महिलाएँ जो चित्र बनाती हैं उनमें कुछ कथात्मक दृश्य, भगवान महावीर को अभिषेक के लिए ले जाती हुई नारियाँ, उनके जन्म अभिषेक पर देवों द्वारा रत्नों की वर्षा, त्रिशला माता के सोलह स्वप्न आदि देखने को मिलते हैं। इस तरह सराक स्त्रियों ने अपनी समृद्ध लोककला की धरोहर को सुरक्षित रखा है। सराक लोकचित्रकला के प्रतीक चिह्न मांगलिक शुभचिह्न, सिद्धशिला, समवशरण की रचना, स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, वर्धमानक्य, भद्रासन आदि हैं। तीर्थंकर के दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी, उनकी अधिष्ठात्री देवियाँ अम्बिका, पद्‌मावती, सरस्वती और सोलह विद्यादेवियों के चित्र भी अंकित हैं।

रंगयोजना के अन्तर्गत सराक लोकचित्रों में पहले हन्दी के रंग का प्रयोग होता था, बाद में लाल रंग का प्रयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त आसमानी, नीला और श्वेत रंग भी समाविष्ट हुआ। इनमें सुनहरी स्याही का प्रयोग भी होने लगा। सराक चित्रकला में पौराणिक वनस्पति के रंगों का स्थान अब आधुनिक रंगों ने ले लिया है। इसका सुनहला रंग जैन चित्रों की विशिष्टता है।

सराक लोकचित्रकला में वस्त्र, आभूषण, मुकुट और मालाओं की सज्जा पर अधिक ध्यान दिया गया है। नारी चित्र में माथे पर बिन्दी, कानों में कुण्डल, बाहों में बाजूबन्द आदि का अंकन किया जाता है। गले में रत्नमालाओं को प्रधानता दी गई है। वस्त्रों में श्वेत तथा स्वर्णिम रंगों को विशेष महत्त्व दिया गया है। बाद में ईरानी प्रभाव के कारण उन पर बेलबूटे बनाए जाने लगे। मुकुट के स्थान पर पगड़ी आ गई। पुरुषों के वस्त्रों में जहाँ धोती और दुपट्टे प्रमुख हैं, वहाँ नारीचित्रों में कंचुकी, रंगीन साड़ी, चुनरी और कटिवस्त्र का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार सराक चित्रकला परम्परा का भारतीय चित्रकला के विकास में अपूर्व योगदान है।

सराक क्षेत्र के भित्तिचित्रों में खनिज रंगों का उपयोग मिलता है। रंगविशेष के खनिज पत्थरों को घिसकर उनमें किरेटिन या गोंद मिलाई जाती है, इससे रंगों का स्थायित्व बढ़ता है। काला रंग बुझे चूने, गोंद और काजल से मिलकर तैयार होता है जिसका उपयोग काली स्याही के रूप में किया जाता है। इन चित्रों में कुछ मूलरंग भी होते हैं। जिनमें केवड़ी (हल्का हरा), हिरमिजि (हरा) सिमरिक (लाल) नील (नीला) काजल आदि हैं। इन भित्तिचित्रों में भी स्वर्णरंग की प्रधानता होती है, जो जैन चित्रकारी की विशेपता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य क्षेत्रों में पिछड़े होने के वावजूद सराकों ने अपनी लोककला और लोक-संस्कृति को समय के झंझावातों से वचाकर रखा है। इसके लिये वे निश्चय ही प्रशंसा के पात्र हैं।

सांस्कृतिक विरासत की सम्पन्नता के वावजूद हमारे सराक भाई एक लम्बे अरसे तक जैन समाज की मुख्यधारा से कटे रहे हैं। पूर्व में हुए प्रयास इन्हें एक पहचान नहीं दे सके। परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने इन्हें अपने स्वर्णिम अतीत से परिचित कराकर एक ओर जहाँ संस्कारित किया है वहीं दूसरी ओर इन्हें साधन-सम्पन्न वनाने तथा शिक्षित कर सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान कराया है एवं सम्पूर्ण भारत की दिगम्बर जैन समाज को प्रेरित कर इन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल कराया है। पूज्य गुरुदेव ने सुदूर जंगलों में इन भाइयों के बीच चातुर्मास कर इन्हें आत्मीयता के संवेगों से, सम्भवतः पहली बार संचारित किया है और हमें आशा है कि वहुत शीघ्र समय की शिला पर फिर से होंगे हमारे भाइयों के समर्थ हस्ताक्षर, उतने ही साफ और चमकीले, जितने सैकड़ों साल पहले थे, वे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक जाति के उत्थान के उपाय

डा० नन्दलाल जैन
रीवाँ (म० प्र०)

सराक जाति के संबंध में विद्वानों ने कुछ प्रसिद्ध लोक कलात्मक, पुरातात्त्विक, मानव-वैज्ञानिक आदि दृष्टिकोणों से प्रकाश डालने का यत्न किया है। अतीत का यह उद्घाटन निश्चित रूप से हमारे भावी कार्यक्रमों के लिए प्रेरक सिद्ध होता है। ब्र० शीतलप्रसाद, पं० बाबूलाल जमादार के समान गृहस्थ या अर्द्ध गृहस्थ लोगों में इस दिशा में जानकारी और कार्य प्रारंभ किया था, पर वह गति नहीं पकड़ सका। इसके कारणों का विवेचन नहीं हुआ है। यह आवश्यक है। इससे हमारा अविद्या पथ भी अवलोकित होगा। पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी ने पिछले कुछ वर्षों से इस जाति को जैनों की मुख्य धारा में लाने के लिए सांगोपांग प्रयत्नों का श्री गणेश किया है। यह हमारे सौभाग्य की बात है।

हम यदि अतीत की बात करें, तो यह स्पष्ट है कि इतिहास में ऐसा काल आया होगा जब पार्श्व या महावीर के अनुयायियों को आत्मरक्षार्थ, संस्कृतिसंरक्षणार्थ सामान्य धारा से अपने को विलगित करना पड़ा होगा। सामान्य जैनों के समान ये भी अपनी मूल काशी मगध भूमि से बाहर चले गये होंगे। लेकिन महावीर के अनुयायियों ने तो अपने बुद्धि, व्यापार एवं चातुर्य से अन्य क्षेत्रों में प्रतिष्ठा पाई और समग्र देश में अपना प्रभाव जमाया पर सराक जाति के लोग क्यों सीमित क्षेत्रों में रहे गये ? क्या उनमें बुद्धि-कौशल या अन्य गुण नहीं पाये जाते ? संभवतः जिस क्षेत्र में वे रहे, वह कृषि-प्रधान रहा हो, वन-क्षेत्र रहा हो। वहाँ लेन-देन का परम्परागत व्यवसाय रहा हो। फलतः इसी में वे लगे रहे। धर्मांतरण, मंदिर-मूर्ति मंजन और उत्पीड़नों के परिवेश में भी वे अपने को, अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को सुरक्षित रख सके, यह उनकी अंतःशक्ति का प्रतीक है।

आज यह जाति मुख्यतः बिहार, बंगाल और उड़ीसा के कुछ भागों में पाई जाती है। इनके आचार-व्यवहार, गोत्र, नाम आदि इनके प्राचीनतम जैन संस्कृति के अनुयायी होने के प्रतीक हैं। कुछ विद्वान् तो इनके दक्षिण भारत में होने के भी साक्ष्य देते हैं। अस्तु, वर्तमान में इन्हें अनुसूचित जनजाति माना जाता है और आर्थिक दृष्टि से हीन भी माना जाता है। अनेक विदेशी इतिहासज्ञों ने भी इनके विषय में कुछ विवरण दिये हैं।

'यह कहना कठिन है कि स्वतंत्र भारत में अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए लागू अनेक योजनाओं से उन्होंने कितना लाभ उठाया। फिर भी, वर्तमान में संम्भवतः वे आर्थिक दृष्टि से विपत्र हैं। संभवतः इसी विपन्नता एवं विलगित जीवन ने उन्हें समग्र जैनधारा से विलगित रखा हो। महावीर के काल में पुरुषादानीय पार्श्वनाथ के अनुयायियों, पार्श्वकों की उपेक्षाभाव भी इनके विलगन का कारण हो सकता है। यह भी संभव है कि ये उस वर्ग के रहे हों जिन्होंने केशी के समान महावीरपंथ में अपने को संविलगित न किया हो। फलतः ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त सामाजिक कारण भी इनके इतने काल तक अलग-थलग पड़े रहने के कारण हो सकते हैं। इनका अनुसंधान और विवेचन आवश्यक है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार, जहाँ ''संतोष परमं सुखं'' एवं 'यथास्थितिवाद' को पुण्य का लक्षण माना जाता है, वहीं आर्थिक विपन्नता को पाप का उदय माना जाता है। फलतः इन्हें पूर्वजन्म का पुण्यात्मा माना जाय, यह कर्म-सिद्धान्तियों के लिये विचारणीय है पर यह हमारी समाज का परम कर्त्तव्य है कि इस विलगित अंग को हम मुख्य जैन धारा में लावें और उनकी विपन्नता को भी दूर करने का प्रयत्न किये थे पर वे दीर्घकालिक नहीं बन सके। उपाध्याय श्री के प्रयत्नों से पिछले चार-पाँच वर्षों में इस दिशा में निम्न कार्य किये गये हैं :-

1. सराकों का मुख्य धारा में समानीकरण—इस हेतु साधुओं के चातुर्मास, साधुजनों की सराक क्षेत्र यात्रायें, सराक-सम्मेलन, सराक-विद्वत् गोष्ठियाँ आदि के माध्यम से मुख्य जैन धारा में उनके प्रति जागरूकता एवं कर्त्तव्य-शीलता का भान कराया जा रहा है। इस अभियान से पर्याप्त आशा बंधी है और यह आशा की जाती है कि समाज के सहयोग से निकट भविष्य में सराक-समुदाय मुख्य जैन धारा का अंग बन सकेगा और वे जैन जनगणना के अंग बन सकेंगे।

2. सराकों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक जागरण—यद्यपि सराक क्षेत्र में पर्याप्त जिन मूर्तियाँ एवं मंदिर-अवशेष पाये जाते हैं, पर संस्कृति को जीवित रखने के लिए मंदिर, शास्त्र एवं गुरुओं की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्र में इनकी नितांत कमी है। इसलिए यहाँ साधु-यात्रायें होने लगी हैं, मंदिरों का निर्माण किया जाता है, ज्ञानसागर संस्कारशाला में चालू की जा रही हैं। धार्मिक शिक्षण शिविर लगाये जा रहे हैं। पाठ्य-सामग्री वितरित की जा रही है। इससे सैकड़ों सराकों में जैन संस्कृति प्रच्छन्न चिह्न अब मूर्तरूप लेते दिखते हैं। इस प्रक्रिया में अनेक व्यक्ति (प्रेमचन्द्र जैन, मेरठ) व संस्थायें (सराक ट्रस्ट, उत्तरांचल तीर्थ क्षेत्र कमेटी, भारतीय जैन मिलन आदि) उत्साहवर्धक सहयोग कर रही हैं।

3. आर्थिक पुनरुद्धार के कार्यक्रम—धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना की जागृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ सराकों को देश की बीसवीं सदी की आर्थिक धारा में सम्मिलित करना भी आवश्यक है। इस दिशा में भी प्रयत्न चालू हुए हैं। उन्हें टाइपिंग, ड्राइविंग, कंपाउंडरी और नर्सिंग के प्रशिक्षणों की व्यवस्था की जा रही है। इनके लिए कुछ केन्द्र भी खोले जा रहे हैं जहाँ ये व्यवस्थायें स्थायी रूप ग्रहण करेंगी।

यह कहना चाहिए कि ये कार्यक्रम अभी शैशव अवस्था में हैं और इनके भविष्य में पूर्ण विकास की आशा है। इस आशा को मूर्तरूप देने के लिए निम्न बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है–

1. सराक-जाति का सामाजिक और आर्थिक सर्वेक्षण–किसी भी कार्यक्रम के सफल होने के लिए उसके वर्तमान स्वरूप का पूर्ण विवरण आवश्यक है। यह हमारी योजना एवं लक्ष्यों को निर्धारित करता है चूँकि सराकोद्धार कार्यक्रम एक दीर्घकालिक एवं दूरदृष्टि की योजना है, अतः सर्वप्रथम हमें सराक-क्षेत्र का सामाजिक एवं आर्थिक सर्वेक्षण कराना चाहिए। धर्मान्तरण की संभावनाओं की प्रक्रिया में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में ऐसे अनेक जातियों के सर्वेक्षण विदेशी माध्यमों से हुए हैं। इस कार्य में हमें क्षेत्रीय या अन्य विश्वविद्यालयों के समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी विभागों की सहायता लेनी होगी। तीन-चार शोधछात्रों को छात्रवृत्ति देना या यू० जी० सी० वृत्ति के माध्यम से उनसे यह कार्य कराया जावे। वे अपने शोध के रूप में हमें यह भी सुझावेंगे कि इस कार्य के लिए दूरदृष्टि से क्या किया जाना चाहिए और एतदर्थ किन स्रोतों से और कितने संसाधन जुटाये जाने चाहिए।

2. जीवनदानी मार्ग-निर्देशक एवं कार्यकर्त्ता–सराकोद्धार कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए हमें न केवल आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता ही है, अपितु कार्यक्रमों को मार्गदर्शन एवं संचालित करने वाले समुचित कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। इस कार्य में मार्गदर्शक तो साधु एवं योगी ही हो सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रति दस हजार की जनसंख्या पर एक साधु/त्यागी होना चाहिए। इस आधार पर प्रायः सौ मार्गदर्शक गुरुओं की आवश्यकता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी त्यागी हों, कुछ गृहस्थ भी हो सकते हैं, पर उन्हें साधुवत् होना चाहिए। इन मार्गदर्शकों की प्रभाविता स्पष्ट है। ये मार्गदर्शक ही कार्यकर्त्ता तैयार करेंगे। कुछ वर्षों के लिए तो लगभग दो-सौ चार-सौ कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कमलकुमार जी पाटौदी के समान उत्तम श्रेणी के कार्यकर्त्ता कम ही हैं। हाँ, मध्यम श्रेणी के कुछ विद्यार्थी कार्यकर्त्ता अवश्य तैयार हुए हैं। मुझे आशा है कि सर्वेक्षण के आधार पर कार्यकर्त्ताओं की समुचित संख्या लगभग पाँच हजार की आबादी पर एक तैयार की जा सकेगी। इन्हें अच्छा शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जावे। उसी क्षेत्र के हों, तो और अच्छा। उन्हें समुचित वेतन (मान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देय नहीं) पर नियुक्त करना होगा जिससे वे पूर्णकालिक काम कर सकें। मार्गनिर्देशक साधुओं को इस कार्य हेतु यदि अपनी शिष्यावली भी बढ़ानी पड़े तो भी यह करणीय है।

3. आर्थिक योजनायें–आर्थिक दृष्टि से समुन्नत करने के लिए प्रशिक्षण के कुछ कार्यक्रम तो चले हैं, पर वे इतने बड़े क्षेत्र के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इस कार्य में अनुसूचित-जनजाति के लिए सरकारी योजनाओं का अध्ययन कर उनसे लाभ लेना एक अच्छी नीति होगी। कृषि और वानिकी का नई तकनीकों से विकास करना, लघु-उद्योग स्थापित कर उनमें नियोजन देना आदि योजनायें सर्वेक्षण के आधार पर वनाई जा सकती हैं। इस विषय में स्थानीय क्षेत्र की रुचियों का ध्यान भी रखना होगा। इस दिशा में अर्थ-संसाधनों को जुटाने का काम अनेक संस्थायें कर रही हैं। वस्तुतः इस जाति की सांस्कृतिक सुरक्षा उसकी आर्थिक संपन्नना पर भी निर्भर करती है।

4. जनजागरण-तंत्र–ऐसे कार्यक्रमों के लिए जन-जागरण-तंत्र भी एक अनिवार्य अंग है। एतदर्थ दो पत्रिकायें सराक ज्योति तथा सराक संहति तो प्रकाशित हो रही हैं, पर लोक संचार माध्यम का उपयोग अभी नगण्य है। इस ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

अनेक वर्तमान कार्यकर्त्ता इस कार्य में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुगमन करते हैं। पर उन्हें प्रसव-वेदना के समान आल्हादकारी के रूप में लेना चाहिए। मानसिकता के जागरण का कार्य दूर-दृष्टि का कार्य है और दीर्घकालिक कार्य है। मुझे विश्वास है कि उपाध्याय श्री का मार्गदर्शन इसे सदैव मिलता रहेगा चाहे वे जहाँ भी रहें।

इस प्रकार, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास के कार्यक्रम, समुचित मार्गदर्शक एवं कार्यकर्त्ताओं के माध्यम से सराक जाति को मुख्य जैन धारा की अनुभूति करायेंगे। यह अत्यंत पाप-क्षयी एवं पुण्य-अर्जक कार्य है। इसमें सभी जैनों का सहयोग अपेक्षित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक क्षेत्र : एक दृष्टि

प्रो० के० के० जैन
टूटी पुलिया, बीना (म० प्र०)

जैन महिलादर्श की सम्पादिका, तीर्थंकर वाणी, कुन्दकुन्दवाणी, जगमगदीप ज्योतिमें महिला स्तंभ की सम्पादिका, राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत, सुसंस्कृत, हृदयस्पर्शी वाणी की धनी, सफल कार्यक्रम संचालक, राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न विधाओं में अपनी पृथक् पहचान बनाकर महिला समाज को गौरवान्वित करने वाली डा० नीलम जैन द्वारा लिखित 'सराक क्षेत्र' नामक पुस्तक उनकी अदम्य जिज्ञासा व सतत परिश्रम का ज्वलंत उदाहरण है

इस पुस्तक में लेखिका ने भारतीय संस्कृति के अनन्य संरक्षक सराक जाति के आचार-विचार और संस्कारों का उनकी कार्यशैली का बड़ा ही स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। अपने इस लेखन कार्य में सजीवता लाने के लिए सराक बन्धुओं से स्वयं चर्चा भी की है। सराकों के गोत्र, उनके व्यवसाय, धर्म व संस्कार को प्रस्तुत करती हुई लेखिका कहती हैं-"ये अहिंसक शैली के सच्चे प्रतिनिधि हैं। इनके चेहरों पर जो सांस्कृतिक छाप है उससे स्पष्ट है कि ये अत्यन्त मानवीय और नख-शिख अहिंसक हैं। इनका जीवन पवित्र, निश्छल, शालीन, भद्र और रहन-सहन करुणा से ओत-प्रोत है। ये ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण तथा भारतीय संस्कृति के सिरमौर हैं।"

बिहार, उड़ीसा और बंगाल प्रान्त के इस पिछड़े और अभावग्रस्त क्षेत्र के निवासी सराकों के प्रति लेखिका के मन में एक गहरी पीड़ा है "यहाँ के बच्चों के गालों पर आपको लाली देखने को नहीं मिलेगी। बचपन ही में ये थके से लगते हैं; न शिक्षा के आलोक का ऑक्सीजन इनके पास है न जीवनस्तर को ऊँचा करने वाला कोई उद्योग या व्यवसाय। इनकी बीमारी का बस भगवान ही रक्षक है। अस्तित्व के लिए चलने वाला निरन्तर संघर्ष यहाँ प्रत्येक की आँखों पर लिखा मिल जाएगा।" आलोच्य पुस्तक में हेनसांग, पर्सी ब्राउन आदि के संदर्भों का उल्लेख करते हुए भगवान महावीर के भ्रमण-स्थल, भारत की स्थानीय कलाशैली का विवरण किया गया है।

पुस्तक में संकलित परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर का प्रवचन बड़ा ही सारगर्भित है। इसमें तीर्थंकरों की बिहारस्थली और सराक बन्धुओं की आश्रयस्थली बिहार, उड़ीसा और बंगाल के सांस्कृतिक वैभव का वर्णन करते हुए भगवान महावीर के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है-"भगवान महावीर ने व्यक्ति और समाज के उद्धार के लिए चारों पुरुषार्थों को सम्यक् ढंग से चरितार्थ करने के लिए राजनीति और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

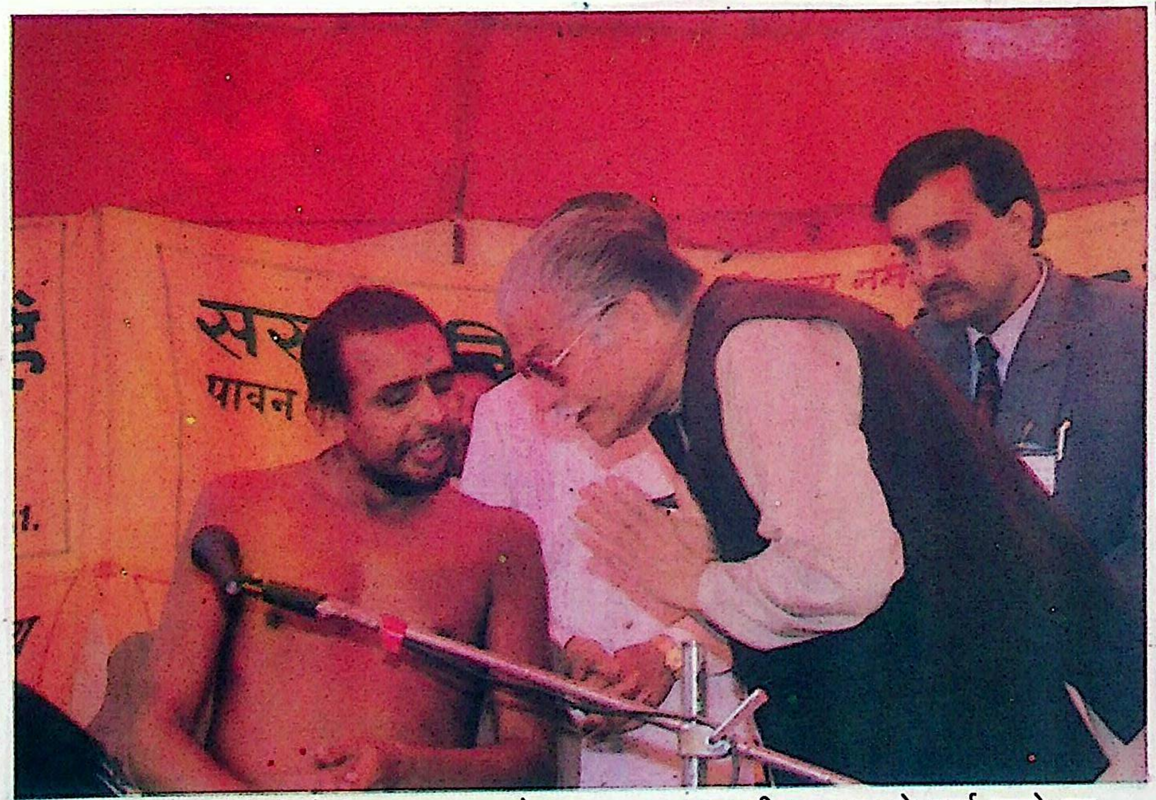

सराक विद्वत् संगोष्ठी में परमपूज्य सराकोद्धारक ज्ञानसागर जी महाराज से चर्चा करते हुए भारतवर्षीय सराक ट्रस्ट के कोषाध्यक्ष श्री उम्मेदमल जी 'पाण्डया', दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराकं विद्वत् संगोष्ठी में सराक क्षेत्र पुस्तक का विमोचन करते हुए
साहू रमेश चन्द जी, निदेशक टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक विद्वत् संगोष्ठी में मंच पर आसीन विद्वत्वर्ग—डा० नन्दलाल जी रीवा, डा० रमेश चन्द जी बिजनौर, डा० अशोक जी ग्वालियर, डा० श्रेयांस जी बड़ौत, डा० उपश्रेणिक सहारनपुर, डा० नीलम जी सहारनपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

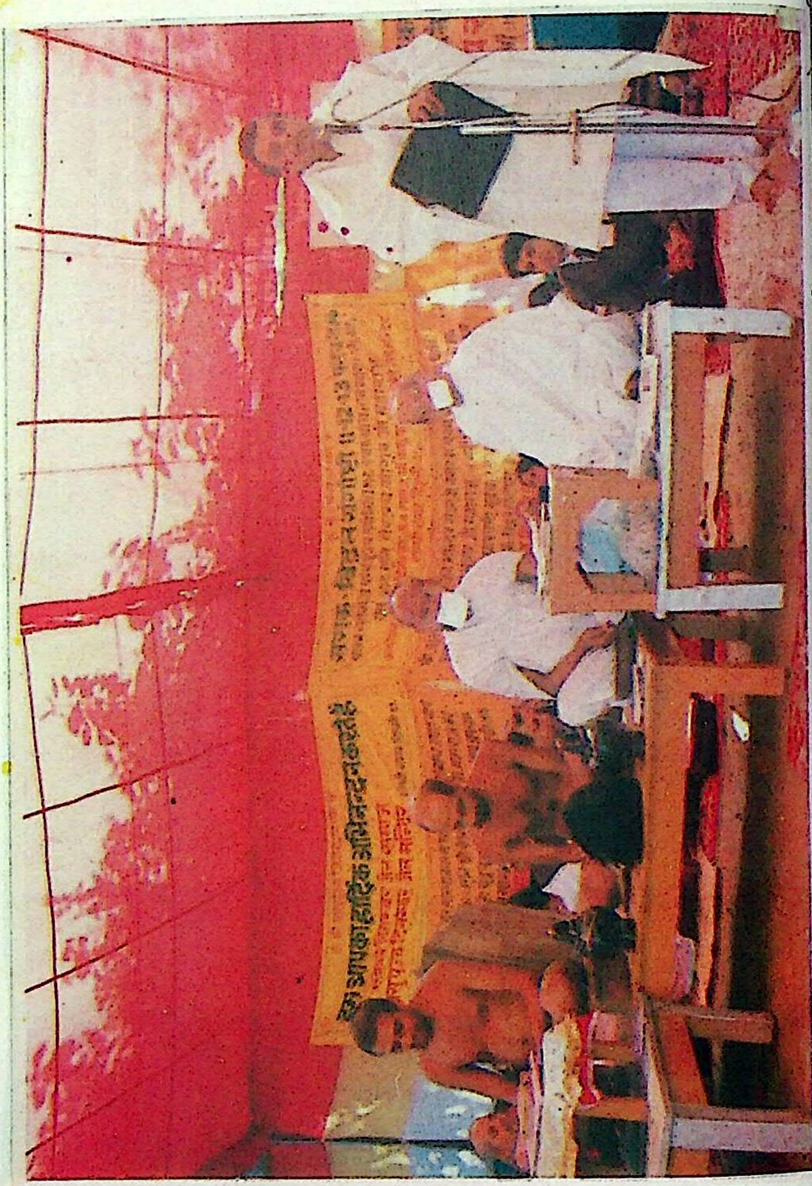

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म को गतिशील बनाया। उन्होंने धर्म की व्याख्या ही नहीं की, अपितु उसको गति भी दी।" वाराणसी नरेश अश्वसेन और महारानी वामादेवी के दीक्षा प्रयास का उल्लेख करते हुए सराकों के कुलदेवता भगवान् पार्श्वनाथ के लोकव्यापी प्रभाव का भी उल्लेख किया है। 'वीर की वीरभूमि' तथा 'सिंहभूम' नामक लेख में सराक-संस्कृति, उनकी दिनचर्या, भगवान् महावीर के प्रति उनमें विद्यमान अपूर्व भक्ति का परिचय देते हुए उनके गोत्रादि का वर्णन किया है। 'श्री दिगम्बर सराक जैन मंदिर नवाडीह' में नवाडीह के जैन मंदिर में उपलब्ध कराये गये साहित्य तथा वहाँ आयोजित धार्मिक शिक्षण शिविर का वर्णन है। वीरभूम और सिंहभूम में वहाँ विद्यमान ग्राम, सराकघर शिक्षित व्यक्तियों की संख्या, थाना, जिला, गोत्रादि का वर्णन है। इस क्षेत्र के निवासियों में परमपूज्य उपाध्याय जी की प्रेरणा से एक नई चेतना जागृत हई "क्षेत्रवासियों का यह भी पुण्य ही है कि एक तो यहाँ पूर्व से मंदिर है ही, जहाँ नहीं थे वहाँ पूज्य उपाध्याय श्रीजी की प्रेरणा से कुछ ग्रामों में प्रतिमाएँ स्थापित हुईं। धार्मिक पर्वों को आयोजित करने का अपार उत्साह रहा, घर-घर में पहली बार दिगम्बर साधु और तीर्थंकरों के चित्र लगे। मंदिरों में शास्त्र स्वाध्याय प्रारम्भ हुआ। भाग्योदय में सिंहभूम प्रथम रहा, रहता भी क्यों न ? आखिर भगवान् महावीर की भूमि जो है।" आज आवश्यकता है कि सिंहभूम आदि ग्रामवासियों को धर्म के मूल संस्कारों से, जो इनके पास आज भी सुरक्षित हैं, इन्हें समृद्ध बनायें। प्रतिभा सम्पन्न इन ग्रामवासियों को आर्थिक प्रगति के नये स्रोतों से जोड़ें, ताकि हर महिला, पुरुष और बच्चा संघर्षों से जूझते हुए काल-कवलित न हों। इस दर्द का अहसास करती हुई लेखिका कहती हैं–"ढेरों बच्चों की त्रासदी कई अर्थों में इससे भी बड़ी है। वे मौत से तो बच जाते हैं पर उन्हें मुर्दा भविष्य जीने को बाध्य होना पड़ता है। जब सारी दुनिया तेज और तेज दौड़ने की कोशिश में लगी हो, हजारों दुर्भाग्यशालियों को अपने पैरों पर चल पाना नसीब न हो या जब सारी दुनिया बेहतर कल की ओर देखने में लगी हों, ढेरों भाग्यहीन बच्चे कुछ भी देख पाने में असमर्थ हों या फिर जब शारीरिक, बौद्धिक स्तर की नयी सीमाएँ तलाशी जा रही हों, ढेरों बच्चे केवल आयोडीन युक्त नमक न पाने के कारण मन्दबुद्धि हो जायें और शारीरिक रूप से अविकसित रह जाएँ तो इसे घोर दुर्भाग्य या मौत के बराबर कहना शायद इन बच्चों को त्रासदियों को कम करके आँकना है। शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता पर कुपोषण का तुर्रा और इससे भी आगे इन दुर्भाग्यशाली बच्चों के आस-पास अपना साम्राज्य स्थापित किए हुए अज्ञानता, अशिक्षा और गरीवी ऐसे हजारों बच्चों की जिन्दगी को मजाक-एक क्रूर मजाक बना देती है।"

निश्चय ही हमारे सराक बन्धुओं के सामाजिक आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक स्थिति को उजागर करते हुए ये निबंध बड़े ही मार्मिक बन गये हैं। इन निबंधों के द्वारा एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर जहाँ लेखिका ने सराक जाति के मूल संस्कार, आचार-विचार, उनके बौद्धिक परि और धार्मिक जागरूकता को व्यक्त किया है वहीं आज के इस वैज्ञानिक यु विविध सुख-सुविधाओं से अपरिचित उनके अभावग्रस्त गरीबी युक्त जीवन के विविध को भी प्रस्तुत किया है। इनके पूर्व गहरी पीड़ा का अनुभव करते हुए इनके उत्थान कामना की है।

प्रस्तुत पुस्तक में संकलित कतिपय लेख बंगाल, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल के प्रा इतिहास, वहाँ के निवासी जैन सराकों की अवस्थिति, उनकी शिक्षा आदि का पूर्ण परि देते हैं। बाकबीरा एवं पाकवीरा के विभिन्न छायाचित्र उनकी प्राचीन भव्यता को व हैं। जिला बाकुड़ा, पुरुलिया आदि के ग्राम्य सर्वेक्षण लेखिका के अथक परिश्रम, उ जिज्ञासा एवं तदनुरूप प्राप्त सफलता के साक्षात् उदाहरण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक क्षेत्र : नदी–वन–पर्वत का लहराता चंचल–अंचल

–प्राकृतिक वैभव विलास का विशिष्ट शृंगार।
–परमपावन अक्षय अक्षुण्ण-तीर्थों की आधार।
–शाश्वत, उदीयमान, उज्ज्वल अनेकान्त अपरिग्रह, अहिंसा दर्शन का प्रसार।
–गौरवमय इतिहास।
–प्रतापी अहिंसक राजवंशों की केन्द्रस्थली।

सराक क्षेत्र की सांस्कृतिक महत्ता का प्रतीक इसकी प्राचीनता में में अन्तर्निहित अतुल वैभव है। अपनी गौरव दीप्त परम्परा का विकास सूत्र आदिकाल से ही स्वर्णिम उत्थान का संवाहक रहा है। अनेक प्रसिद्ध इतिहासज्ञों ने इसकी प्राचीनता एवं ऐतिहासिक अस्तित्व को प्रभावित किया है। जैन धर्म के उत्थान का उगता सूरज इसी क्षेत्र ने देखा है। श्रमण संस्कृति के जीवनदान, संवहन और पोषण का श्रेय इसको प्राप्त है तथा विश्व में उसका परिचय देने और प्रसार का कार्य वहीं से सम्पन्न हुआ थ। विश्व की समस्त कला, ज्ञान, विज्ञान और भौतिक समृद्धि का यही क्षेत्र केन्द्रस्थल है। समय बदला इतिहास का पृष्ठ अहिंसक राजवंशों द्वारा क्षेत्र के उत्थान के साथ खुलता है तो वह हिंसक धर्मान्ध राजाओं के आतंक एवं अतिक्रमण से क्षेत्र के पतन के साथ बन्द हो जाता है। धीरे-धीरे आतंक से आतंकित अलग-थलग पड़ जाता है और शेष भारत इसे भूल जाता है। लेकिन नहीं भूलते हैं तो वे जिन्होंने मानव बनकर मानवता के उद्धार का संकल्प लिया, समस्त मोहमाया को त्यागकर विश्व को ही अपना कर्मक्षेत्र समझा–ऐसे ही धरा को उष्मा देने वाले सूर्य का नाम है उपाध्याय ज्ञानसागर जी। पूज्य उपाध्याय श्री ने उनके उत्थान का संकल्प लिया और समाज का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। फलतः "जहाँ चाह वहाँ राह" वाली उक्ति सार्थक हुई। पूज्य श्री की प्रेरणा से हुई सराक सर्वेक्षण गति-विधियों का संक्षिप्त ब्यौरा है–

सर्वप्रथम सराक ग्रामों का पूर्ण ब्यौरा तैयार किया गया अर्थात् किस जिले में किस रेलवे स्टेशन या बस स्टैण्ड के निकट सराकों के किस-किस नाम के ग्राम हैं। प्रत्येक ग्रामों में सराकों के कितने घर हैं, किस ग्राम में मिडिल या हाईस्कूल है। कितने व्यक्ति शिक्षित हैं तथा वहाँ के लोगों की प्रकृति व रीति-रिवाज कैसा है ? प्रत्येक ग्राम में सराक पंचायत के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नाम-पते नोट किये गये। सभी परिवारजनों के नाम, पिता का नाम व आयु भी नोट की गई। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक चरण में भगवान महावीर व पार्श्वनाथ के चित्र आदि वितरित किए गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक ग्रामों के ही युवाओं को उपाध्याय श्री ने विशेष निर्देश देकर सराक ग्रामों में भेजा। इन्होंने एक स्थान पर गाँव वालों को एकत्रित करके धार्मिक कथाएँ और भजन सुनाए, याद कराए। महावीर जयन्ती, दशलक्षणपर्व आदि उत्सव मनवाये उनके धर्म व जाति का गौरव उत्पन्न किया। इस सम्पर्क से परस्पर सौहार्द प्रेम भावना भी उत्पन्न हुई। तभी से लेकर सराक बन्धुओं को विशेष रूप से धार्मिक प्रशिक्षण शिविर लगाकर प्रशिक्षित किया गया है। ये धार्मिक प्रशिक्षण शिविर सराक ग्रामों में भी अब तक हजारों बालक-बालिकाओं को प्रशिक्षित कर चुके हैं। श्री सम्मेद शिखरजी में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी की प्रेरणा से आचार्य श्री 108 भरतसागर जी के सानिध्य में अन्य सराक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ जिसमें विभिन्न ग्रामों के सराक बच्चों, पुरुषों एवं महिलाओं ने धर्म का विधिवत् प्रशिक्षण दिया गया।

सराक क्षेत्र सर्वेक्षण–

किसी भी क्षेत्र के लिए विकास योजनाएँ बनाने से पूर्व आवश्यक हो जाता है क्षेत्र का सर्वेक्षण। जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थिति, खनिज सम्पदा, वन सम्पदा, प्राकृतिक संसाधनों तथा जीवनस्तर का भली भाँति परिचय होने से योजनाओं का प्रारूप सरलता से उपयोगी एवं प्रभावी बन जाता है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए उपाध्याय श्री ने सराक नवयुवकों की टीम तैयार की और विविध जानकारी सहित प्रामाणिक जानकारी एकत्रित होकर विश्वसनीय आँकड़े सामने आए। इस सर्वेक्षण की उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही कि इस प्रामाणिक जानकारी के आधार पर तड़ाई में विराट सराक सम्मेलन में अब तक के पास-पास रहते हुए अपरिचित सराक भी जहाँ परस्पर परिचित हुए वहीं बंगाल, उड़ीसा, बिहार का परस्पर सम्मिलन हुआ। इस सर्वेक्षण के उपरान्त सराक स्वयं आश्चर्यचकित थे। अपनी विशाल जनसंख्या देखकर तथा अपने गोत्रों के आधार पर यह जानकर कि उनका विशाल समुदाय है। इस सर्वेक्षण के आधार पर योजनाएँ भी नियोजत ढंग से बन रही हैं।

सांस्कृतिक उत्थान की रूपरेखा–

बंगाल, बिहार, उड़ीसा की बिखरी हुई सम्पूर्ण जाति को एकसूत्र में पिरोकर संगठित किया जा रहा है। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए इनके प्रत्येक ग्राम के सराकोत्थान समिति की स्थापना की गई है, जिनकी प्रतिमाह बैठक होती है ये सब समितियाँ मिल-जुलकर बैठती हैं। प्रेम व संगठन जागृत करने का प्रयास करती हैं। अपने ग्राम की मुख्य समस्याओं और आवश्यकताओं को केन्द्र तक पहुँचाती है। समिति अपने ग्राम में चल रहे विद्यालयों, सिलाई केन्द्रों का भी निरीक्षण करती है तथा रिपोर्ट केन्द्र को भेजती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभी ग्राम समितियों को केन्द्र समिति के आधीन रखा गया है। आयोजित सराक सम्मेलनों में केन्द्रीय अधिवेशनों में इनके प्रतिनिधि आकर अपनी आवश्यकताएँ, त्रुटियाँ व सफलताएँ बताकर आवश्यक प्रस्ताव पास कराती है। ये सम्मेलन अब तक उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में नौड़ी, तड़ाई, साढ़म, पुरुलिया, मिहिजाम, सरिया, मेरठ, सहारनपुर, खतौली, बड़ागाँव (मेरठ) में हो चुके हैं। इनमें सैकड़ों की संख्या में सराक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

विभिन्न ग्रामों में मन्दिर बनाये गए कहीं-कहीं प्रतिमाओं की स्थापना कराई गई। प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार भी कराए जा रहे हैं। नित्य देवदर्शन के नियम सराक बन्धुओं ने लिए। पूजन व स्वाध्याय भी करते हैं।

एक मासिक पत्रिका सराक-ज्योति (हिन्दी) एवं एक सराक-संहिता (बंगला) में निकाली जा रही है। सराक क्षेत्र में इसका निःशुल्क वितरण है। वर्तमान में सराक ज्योति का सम्पादन अ०भा०दि० जैन शास्त्रिपरिषद् के महामन्त्री डॉ० जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर कर रहे हैं।

जैन तीर्थक्षेत्रों पर वन्दनार्थ जाने को प्रोत्साहित किया जाता है इस क्रम में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर 57 सराकबन्धु गए। पावापुरी, श्री सम्मेद शिखर जी की वन्दना हेतु भेजा गया। उ० प्र० के तीर्थ तिजारा जी, बड़ागाँव, वरनावा, हस्तिनापुर क्षेत्र के दर्शनार्थ 50-60 सराक भाई गए। तीर्थ क्षेत्र कमेटी से उनका परिचय कराया गया। इससे उन्हें अपने तीर्थों को देखकर आनन्द हुआ।

पुरुलिया के समीप स्थित पाकवीरा अतिशय क्षेत्र का विकास, मन्दिर निर्माण एवं संग्रहालय की स्थापना से बंगाल क्षेत्र में व्यापक धर्म प्रभावना हुई। पुरातत्त्व की दृष्टि से समृद्ध यह क्षेत्र अब बंगाल प्रान्त का तीर्थ बन गया है। क्षेत्र पर आधुनिक सुविधाओं का विकास किया जा रहा है।

रघुनाथपुर में सैण्टर बन जाने से गतिविधियाँ सुव्यवस्थित हुई हैं, दो जैन मन्दिरों को निर्माण श्री प्रेमचन्द जैन मेरठ (तेल वालों) की ओर से राजड़ा बोदमा ग्राम में हुआ। अध्यापिका प्रभावी ढंग से फरवरी '96 में वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

गरीब असहाय वृद्धों को आर्थिक सहायता एवं वस्त्रादि से भी सहायता दी जा रही है। बुण्डु आदि कुछ स्थानों पर आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहे हैं। अनेक स्थानों पर प्रारम्भ करने की योजना प्रस्तावित है।

लड़कियों के विवाह में आर्थिक सहायता भी कुछ गरीब सराक बन्धुओं को दी गई है तथा युवकों को रोजगार भी दिलाने के प्रयास हो रहे हैं।

अनेक जनपदों में सराकोत्थान समितियों का गठन हुआ जो सराक क्षेत्र का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रमण भी कर रही हैं तथा वहाँ के जनजीवन को सूक्ष्मता से देख-परखकर तदनुसार सेवाकार्य सहयोग आदि कर रही है। चिकित्सा शिविर आदि भी लगाए गए हैं। आगामी योजनाओं की भी रूपरेखा बनायी जा रही है। शासकीय एवं प्रशासकीय स्तर से भी कार्य हो रहे हैं। भारतवर्षीय दि० जैन सराक ट्रस्ट की ओर से एक मोटरसाइकिल व पूनमचन्द गंगराज गंगवाल की ओर से एक टाटा सूमो गाड़ी सराक क्षेत्र की गतिविधियों को समुचितरूपेण संचालित करने हेतु प्रदान की गई है। इसके कार्य की गतिशीलता बढ़ी है।

सराक साहित्य–

सराक क्षेत्र से वर्षों तक सम्पर्क न रहने से ये शेष जैन समाज से पृथक् हो गये थे। सराक भी अपने ही क्षेत्र में अपने से अपरिचित हो गये थे। अपने जैनत्व के गौरव से इनका भी जैसा नाता टूट गया था वर्तमान में उपाध्याय श्री जी के भागीरथ प्रयासों से यह कहीं पुनः जुड़ी है। साहित्य द्वारा भी जागृति की गई है। हम और हमारे पूर्वज सराक, उपाध्याय ज्ञानसागर जी सराकों के बीच, सराक-क्षेत्र प्रगति की राह पर, सराक क्षेत्र : सर्वेक्षण एक समीक्षात्मक अध्ययन, सराक क्षेत्र, सराक ज्ञानांजलि, सराक-संस्कृति आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनका जैन जगत में व्यापक स्वागत हुआ तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यथा अहिंसा सन्देश, तीर्थंकर, जैनप्रदीप, जगमग दीपज्योति, दर्शन ज्ञानचारित्र के "सराक विशेषांक" प्रकाशित किये गये। मीडिया (समाचारपत्रों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन, से प्रचार होने से एक वातावरण बना है। समाजशास्त्री अनुसंधान में रुचि ले रहे हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा सराक विषय पर डी० लिट्० हेतु आर्थिक सहायता की स्वीकृति एक बंगाली युवक को दी गई है। विश्वविद्यालयों से इस सम्बन्ध में पत्राचार चल रहा है। महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं ने आलेख प्रकाशित किये हैं। इस प्रकार अब सराकों से शेष समाज का परिचय का क्रम बढ़ रहा है। बाबूलाल जैन जमादार (बड़ौत) द्वारा प्रकाशित साहित्य द्वारा सराक समाज पर विशेष सामग्री पूर्व में भी प्रकाशित हुई है।

गतवर्ष ब्र० राजेन्द्रजी ने उस क्षेत्र में चातुर्मास किया। पूज्य आ० भरतसागर जी एवं आ० संभवसागर जी के विहार से उनमें त्यागी वृत्तियों के प्रति सेवा-सत्कार एवं आहार-दान की विधि का ज्ञान हुआ। पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी के दो वर्षों के प्रवासों से उनके प्रवचनों से धार्मिक जागरण हुआ। वर्तमान में ब्र० मनीष जी बंगाल प्रान्त के सराक-क्षेत्र में प्रवास कर धार्मिक जागृति कर रहे हैं। शिविर आदि लगाये जा रहे हैं। उनमें उपवास आदि करने की भावना भी जागृत की जा रही है। पूजा प्रक्षाल करना भी सिखाया जा रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिक शिक्षा–

मुख्य–मुख्य केन्द्रीय स्थानों पर प्राइमरी विद्यालय खोले गये हैं। हाईस्कूल, मिडिल स्कूल में जहाँ सराक बालक–बालिकाएँ पढ़ रहे हैं उनके अध्ययन की समुचित व्यवस्था की जा रही है जिनमें लौकिक शिक्षा के साथ–साथ नैतिक शिक्षा भी दी जा रही है। विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ, स्कूलड्रेस पारितोषिक वितरित किये जाते हैं। कुछ सराक बच्चों को जैन गुरुकुलों में भी भेजा जा रहा है। आरा, पावापुर, वाराणसी आदि में बालक अध्ययन कर रहे हैं।

युवकों को तकनीकी प्रशिक्षण भी किया जा रहा है। ड्राइविंग, टाइपिंग स्कूल खोले गये हैं तथ कम्पाउण्डरी आदि भी सिखाई जा रही है।

महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए सिलाई एवं हस्तशिल्प केन्द्र खोले गये हैं जो सफलतापूर्वक चल रहे हैं। इनको अभी विस्तार दिया जाना है।

प्रचारकों एवं कुछ निरीक्षकों को विशेष प्रकार से प्रशिक्षित करके सराक ग्रामों में भेजा जाता है जो वहाँ जाकर सभी चल रहे कार्यों का निरीक्षण करते हैं। ये सराक जाति के ही शिक्षित युवक हैं। इन प्रचारकों के माध्यम से वहाँ के लोग अपने विचारों का सही ढंग से आदान–प्रदान करते हैं। ये शाकाहार, नैतिक संस्कार एवं धार्मिक पुस्तकें ग्रामों में वितरित करते हैं। ये प्रचारक सराक क्षेत्र एवं शेष जैनसमाज के मध्य सेतु का कार्य करते हैं। उत्तर भारत में गठित विभिन्न सराकोत्थान में संलग्न समाजसेवी संस्थाओं को पत्रिकाओं के माध्यम से वहाँ के कार्यों का ब्यौरा दिया जाता है। समय पर समाजसेवी वहाँ जाकर उनकी समस्याओं का निराकरण करने की ठोस क्रियान्वितत करते हैं।

कार्य बहुत बड़ा है, इसके लिए परिश्रम एवं धन दोनों की महती आवश्यकता है लेकिन ऐसा भी गुरुतर नहीं है कि असंभव ही है। यदि सभी जैन बन्धु एक बार अपने जैनत्व के इस गौरव स्तम्भ क्षेत्र के उत्थान का मन बना लें तो इससे अधिक पुण्यप्रद क्या होगा कि चारों दानों का फल तो है साथ ही 8-10 लाख सराक जैन जगत का अंग बन जाएंगे इससे समाज का संगठन सशक्त होगा तथा पूर्वांचल में जैनध्वज पुनः यहाँ पूर्ण गौरव से लहराएगा।

25 सेंटरों के चलाने हेतु निम्न व्यवस्थाएँ करनी हैं :–

1. हमें 50 सिलाई मशीन भेजनी हैं। 20 भेज चुके हैं, 30 और भेजनी हैं।

2. धर्म शिक्षा योजना में धर्म शिक्षण कराने वाले सराक बन्धुओं को 300/400/ रुपये मानराशि देने हेतु एक वर्ष की राशि भेजनी है अभी केवल 25000/- भेजे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. बंगला भाषा में एक पूजा की पुस्तक व धर्म शिक्षण की पुस्तक छपी है, और छपवानी हैं।

4. 25 स्वेटर बुनाई की मशीनें भेजनी है।

5. 25 टाइप मशीनें भेजनी हैं।

6. कुछ विपन्न विधवाओं को मासिक सहायता भेजनी है।

7. गरीब विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था करनी है।

8. एक सप्ताह के शिक्षण शिविरों के लगवाने की व्यवस्था एक शिविर में 800/900/ का व्यय होता है।

9. ड्राइविंग व कम्पाउण्डरी शिक्षण की व्यवस्था, ड्राइविंग की ट्रेनिंग में लगभग 1300/- कम्पाउण्डरी में 1500/- खर्च आते हैं।

10. रांगामाती तथा नौढ़ी (जिला राँची) में चिकित्सा केम्प लगे।

11. रांगामाती (जिला राँची) में आई केम्प लगा।

12. श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) की यात्रा 55 सराक लोगों ने की।

13. श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा लगभग 60 सराक बन्धुओं ने की।

14. लगभग 50 सराक ग्रामों में धार्मिक पाठशालाएँ चल रही हैं।

15. हजारीबाग, राँची, वुण्डु, नौढ़ी, तडाई, साड़म, पुरुलिया, मिहिजाम, सरिया, खतौली, सहारनपुर, बडागाँव आदि स्थानों में विराट् सराक सम्मेलन का आयोजन किया गया।

16. लगभग 35 सराक ग्रामों में धार्मिक शिक्षण शिविर लग चुके हैं।

17. बड़ागाँव (मेरठ) में दि० 23-10-95 से 4-11-95 तक धार्मिक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

18. पांगुरा (राँची) में धार्मिक शिविर का आयोजन किया गया।

आधारभूत करुणा का एक धागा यदि सबको पिरो ले तो इस क्षेत्र की महत्ता एवं विशिष्ट पहचान विश्व के नक्शे पर एक स्थायी स्थान बना लेगी, आज उपाध्याय श्री जी के वरदहस्त की उष्मा जैसे उन्हें एक गहन, प्रदीर्घ अत्यन्त विराट अन्धकार से निकालकर आशा एंव विश्वास के प्रकाशमण्डल में ला रही है, अन्तरंग की छटपटाहट को अन्तरंग में रखे हुए आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक विसंगतियों से जूझते हुए भी अपनी चारित्रिक तेजस्विता और आत्मबिम्ब को सुरक्षित रखने वाले सराक परिवारों की जड़ों का प्रसार और पोषण पूरी समाज के सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए उपयोगी है। इनकी जीवनव्यापी साधना का सुफल संतुलित जीवन-दर्शन की प्रस्तावना है। उपाध्याय श्री के 2 वर्ष के इस क्षेत्र में विहार-यात्रा ने इनको जीवन्त हृदय दिया है और हृदय को प्राणवन्त धड़कने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दी हैं। जीवन में स्थायी अभ्युदय के मूलभूत उपायों को रेखांकित किया है, शुष्क मरुभूमि में अध्यात्म के विरवे रोप दिये हैं। आज संस्कृति के दर्पण में सराकों में अपना और अपने समय का चेहरा देखने का आत्मवल आ गया है। आवश्यकता है कि सब इस दर्पण को धूमिल न होने दें। पूर्ण निष्ठा एवं मानचित्र को और रंगीन बनाये तथा अपनी समाज को समृद्ध करें।

सराक क्षेत्र केवल हमारी जाति या हमारे देश के गौरव की ही वस्तु नहीं सम्पूर्ण मानवता के गौरव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब तक विश्व में अहिंसा के प्रति आस्था, मानवमात्र के प्रति करुणा शेष है तब तक यह क्षेत्र अपने दिव्य प्रकाश का आलो वितरण करता रहेगा। यहाँ के संस्कारों और प्राकृतिक सम्पदा पर जितना गौरव करें, अल्प हैं। सराक क्षेत्र के सुदीर्घ इतिहास में स्वर्णिम एवं अन्यतम समय है जब तीर्थंकरों के पावन चरणों का स्पर्श कर इस क्षेत्र का एक-एक रजकण पुलकित हुआ। जहाँ सुमन आचरण के प्रतिमानों को देख-देख हँसते रहे, जहाँ भ्रमर पुंज अपने मधुर राग में उनकी तपश्चर्या की कथा का गुंजार कर सुप्त कलिकाओं को जगाते रहें। ढाई हजार वर्ष के मध्य अनायास इस क्षेत्र की श्री समृद्धि को जैसे किसी की नजर लग गई और जहाँ इस क्षेत्र को संघर्ष के दावानल में जलकर अनेक आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों का दोहरे स्तर पर सामना करना पड़ा वहीं इस क्षेत्र को गुमनामी के अंधेरे में जीकर सर्वप्रकार की आर्थिक समृद्धि एवं सामाजिकता से पृथक् रहकर दरिद्रता एवं एकाकीपन के अभिशाप को झेलना पड़ा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सराक' शब्द की निष्पत्ति : एक मन्तव्य

ब्र० राकेश जैन, जबलपुर

'सराक' शब्द अब जैन समाज के लिए लगभग अपरिचित जैसा नहीं रह गया है। कारण, कुछ दर्षों पूर्व स्व० पं० बाबूलाल जमादार व हाल के कतिपय वर्षों में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के अपने अथक/सघन/क्रमिक प्रयासों ने इसे बहुश्रुत बना दिया है।

कहना न होगा कि 'सराक' शब्द बिहार, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल के उन पुरातन जैन बन्धुओं के लिए प्रयुक्त होता रहा/हो रहा है जो कि अपनी अर्वाचीन वंशपरम्परा एवं वर्तमान में अपने संस्कारों के कारण जैन श्रावकों के समकक्ष दिखाई देते हैं और वही इनके जैनधर्मावलम्बी होने के सशक्त प्रमाण भी हैं।

'सराक' शब्द के प्रचलन के विषय में अद्यावधि लगभग एक प्रचलित अवधारणा रही है, जिसे कि संभवतः प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर प्राथमिकी ही मानी जा सकती है, जो कि बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर 1910 की पृष्ठ संख्या 23 पर उल्लिखित मिस्टर एल० एल० एस० ओ० मेली के मत से प्रादुर्भूत हुई मालूम होती है। वे कहते हैं कि–"सराक शब्द संस्कृत के 'श्रावक' शब्द का अपभ्रंश रूप है, जो कि श्रावक से क्रमशः सरावक, सरोक होता हुआ सराक पर आ रुक गया है।" (सराक क्षेत्र, पृ० 11)

इस कल्पना की पुष्टि में बंगाल एथनोलॉजी के कर्नल डैल्टन का यह सन्दर्भ भी बहुत कुछ मदद करता है–"कोलेहन में भी बहुत सरोवर हैं जिनको 'हो' जाति के लोग 'सरावक सरोवर' कहते हैं।" (सराक क्षेत्र, पृ० 12)

डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल कुछ भिन्न रूप से निष्पत्ति करते हुए भी इसी मत की पुष्टि करते हुए प्रतीत होते हैं–"वैसे सराक शब्द श्रावक का ही बिगड़ा हुआ रूप है, श्रावक से अपभ्रंश होकर स्राक बना और फिर स्राक से बिगड़कर सराक बन गया। जैसे श्रावक का बिगड़ा हुआ शब्द सरावगी है, वैसे ही सराक भी उसी का बिगड़ा हुआ शब्द है।" (सराक बन्धुओं के मध्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज, पृ० 6)

यद्यपि सराक शब्द के अपभ्रंश रूप की पूर्वोक्त आकृति धारण करना कोई आश्चर्यकारी बात नहीं होते हुए भी विचारार्ह अवश्य है। कारण, प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्राप्त प्रयोगों में इस प्रकार का विकास/ह्रास दिखाई नहीं देता।

पुष्पदन्त-भूतबलि और कुन्दकुन्द प्रभृति प्राकृतज्ञ, चाहे वे शौरसेनी या महाराष्ट्री, या कोई अन्य भी, तथा अपभ्रंश के महाकवि, रइधू आदि मनीषी श्रावक शब्द को 'सावय'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या 'सावग' रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसे कतिपय उल्लेख निम्न है–

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
भणिये गुणव्वयं खलु, सावगधम्मम्मि वीरेण।
धीरा जहुत्तकारी सुसावया तं ण भुंजंति। समणसुत्तं 2/333
लक्खाणि तिण्णि सावय संखा उसह्यदि अट्ठतित्थेषु।
सव्वाणं सावयाणं मिलिदे.........। तिलोयपण्णति 4/1192-3
एयारसम्मि ठाणे उक्किहो सावओ हवई दुविहो। (वसुनन्दिश्रावकाचार)

इन उल्लेखों के साथ यदि प्राकृत और अपभ्रंश कोशों पर दृष्टि जाती है तो भी वहाँ 'सावग' का कोई रूप 'सराक' रूप से स्वीकार नहीं किया गया। जैसे कुन्दकुन्द शब्दकोश में तथा हिन्दी के 'शिक्षार्थी हिन्दी शब्दकोश' जैसे कोश, जिनमें कि अपभ्रंश के तत्सम वे देशीय रूप भी हैं; 'सराक' शब्द का उल्लेख नहीं करते। (डा० हरदेव बाहरी, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 810)

उपर्युक्त सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में इतना कहना तो आसान है कि यदि श्रावक शब्द का अपभ्रंश कहीं होता था तो भी वह 'सावय' या 'सावग' जैसे रूप में ही होता था, न कि सराक के रूप में।

तब यहाँ 'सराक' शब्द के विषय में दो प्रश्न मुखरित हो सामने आते हैं–

एक, आखिर यह 'सराक' शब्द किस शब्द का अपभ्रंश रूप हो सकता है, जो अपनी निष्पत्ति में दुरूहता या असंभवता न रखता हो ?

और दूसरा, यदि सराक क्षेत्रों में प्राप्त संस्कृति एवं अन्य ऐतिह्य साक्ष्य, जो कि पार्श्वनाथ युगीन या इससे भी पूर्व के हैं, तब इस 'सराक' शब्द को किसी भाषा का अपभ्रंश होने की क्या आवश्यकता होगी। अथवा यह खोज करना कि 'सराक' किस भाषा का रूप है ? निरर्थक नहीं होगा ?

इस विषय में मेरा विचार है, मात्र इसे विचार ही माना जाए, न कि अभी तक स्थापित/विचारित परम्परा का विरोध या उस पर आक्षेप। अथवा न उन्हें गलत सिद्ध करने या नई स्थापना का दम्भ भी नहीं भरना चाहता। अपितु इसे शब्द के समान ही ध्वनित अर्थात् ध्वनिसाम्य की चेष्टा के परिणाम स्वरूप तथा सुबोधगम्य शब्द की तलाशमात्र माने।

जैन आगम में संस्कृत और प्राकृत, दोनों ही भाषाओं में समान रूप में प्रयुक्त होने वाला एक शब्द है 'सराग' इसका प्रयोग कहीं संज्ञा, तो कहीं विशेषण रूप में होता है।

'सराग' और 'सराक' शब्द में मात्र कवर्ग के प्रथम और तृतीय व्यञ्जन का भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, जबकि दोनों ही अल्पप्राण हैं। स्थान और प्रयत्नों के आधार पर भी दानों में भी निकटता है। तब इन दोनों का परिवर्तन सहज संभाव्य होगा। अतः सराग और सराक का जो ध्वनिभेद उच्चारण भिन्नता है वह संभवतः परिस्थितियों के कारण या व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण भी हो गया हो। और एक बार वैसा होने पर कदाचित् वही रूप प्रचलित या प्रामाणिक मान लिया गया हो। जैसे कि हिन्दी में प्रयुक्त 'प्रकट' को 'प्रगट' प्रामाणिक माना जाने लगा है। या राँची जिले की एक क्षेत्रीय ध्वनि (तुइंमुइंभाषा) जो 'मन्दिर' को 'मन्दिल' और 'पत्थर' को 'पत्थल' रूप प्राप्त/विकीर्ण होती है।

सराग शब्द के प्रयोग आगम तथा साहित्य में सर्वत्र तथा सनातन से सर्वमान्य हो दिखाई भी देता है। अतः यह संभावना शीघ्र ही निराकणीय नहीं हो सकती कि 'सराक' 'सराग' का ही परिवर्तित उच्चारण हो।

इसके अर्थ के विषय में भी विचार किया जाए तो वह 'श्रावक' से ध्वनित अर्थ से समधिक, श्रेष्ठ एवं गाम्भीर्य रूप में उपलब्ध होता है। जैन परम्परा में 'श्रावक' जहाँ एक सामान्य अथवा विशिष्ट क्रियाओं से सम्पन्न गृहस्थ व्यक्ति की बोधक संज्ञा है; वहीं सराग शब्द क्रियाहीन/सक्रिय गृहस्थ एवं निश्चित सीमा तक के साधु के वाचक के रूप में उपलब्ध होता है।

जैन परम्परा में प्राप्त होने वाले 'सराग' और 'वीतराग' शब्द जो परस्पर विलोमार्थी हैं, संज्ञा रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। इन सभी उदाहरणो को देना आवश्यक नहीं समझता; कारण जैन शास्त्रों में वे पदे-पदे प्राप्त हैं।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बिहार, उड़ीसा एवं पश्चिम बगाल में पाये जाने वाले श्रावक एवं साधुओं की उभयात्मक संज्ञा 'सराक' रही हो जिसके ऐतिहासिक प्रमाण वहाँ पर बिखरी सांस्कृतिक धरोहर में सुलभतया देखे जा सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक : एक विहंगम दृष्टि

सराक एक जाति है जो समाज का अभिन्न अंग है। ये बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा राज्यों के मूल निवासी हैं। यह मूल श्रावक धर्म के अनुयायी हैं।

वास्तव में सराक भगवान् पार्श्वनाथ एवं भगवान् महावीर के परम अनुयायी हैं। जैन वाङ्मय से ज्ञात होता है कि जिस समय भगवान महावीर ने सिंहभूम, वर्द्धमान, वीरभूम आदि जिलों में विहार किया था, उस समय उन्होंने कई जातियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। इन जातियों में सराक जाति प्रमुख थी। इसी जाति के लोग उस समय 'श्रावक' कहलाते थे, जो बाद में सराक कहलाने लगे।

वैसे 'सराक' शब्द 'श्रावक' शब्द का ही विकृत रूप है। श्रावक से ही अपभ्रंश होकर स्राक बना और फिर स्राक से विकसित होकर सराक हो गया। जैसे 'श्रावकों' शब्द का विकृत रूप 'सरावगी' हो गया है, वैसे ही श्रावक का परिवर्तित रूप 'सराक' है क्योंकि देशभेद के कारण उच्चारण में भी अन्तर आ जाता है, इसलिए कहीं 'श्रावक' शब्द का 'सराक' कहीं 'सरावग' और कहीं 'सरावगी' हो गया है। इस व्युत्पत्ति से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सराक' श्रावक का ही रूपान्तरण है।

सराक का अर्थ है श्रद्धा, विवेक एवं क्रियावान। जो मनुष्य श्रद्धा-विवेकपूर्वक धर्माचरण करता हुआ देवशास्त्र गुरु की उपासना करता है, वह सराक कहलाता है।
सराक के मुख्यतः तीन लक्षण वतलाये गये हैं-

(क) पानी छानकर पीना।
(ख) रात्रि भोजन त्याग।
(ग) देव-दर्शन नित्य नियम पूजा।

उक्त तीनों लक्षण जिनमें पाये जाएँ उन्हें सराक समझना चाहिए। उक्त क्षेत्रों में स्थित सराक बन्धु सराक धर्म के तीनों लक्षणों का विधिवत् श्रद्धा-विवेकपूर्वक पालन करते हैं। अतः इससे सर्वविदित हो जाता है कि सराक भाई श्रावक धर्म का पालन करने के कारण 'श्रावक' हैं।

सराक अपने कुलदेवता के रूप में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को मानते हैं, जो सम्मेद शिखर गिरीडीह) से निर्वाण प्राप्त करने वाले अन्तिम तीर्थंकर थे। इनकी प्राचीन प्रतिमा पूर्णिया जिले के 'अनाईजामाबाद' ग्राम में स्थित है जिसकी ऊँचाई लगभग 5 फुट है, जिसके आस-पास सराकों की बस्तियाँ आज भी स्थित हैं। इसी क्षेत्र में बांकुड़ा जिलान्तर्गत 'बाहुलाडा' ग्राम में 1800 वर्ष प्राचीन भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासनी श्याम वर्ण की प्रतिमा विराजमान है, जो अत्यन्त भव्यमनोज्ञ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस क्षेत्र में भगवान पार्श्वनाथ की ही मान्यता अधिक रही होगी, जिसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि सराक जाति के कुलदेवता पार्श्वनाथ ही हैं।

सराक बन्धु जंगलों में कैसे बसें, इस सम्बन्ध में बतलाया गया है कि सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए युद्धों का सहारा लिया और नरसंहार कर कलिंग जीत लिया। इस युद्ध में लाखों श्रावक मौत के घाट उतार दिये गये क्योंकि वे सभी अहिंसक प्रकृति के थे। ये हथियार उठाना भी पाप समझते थे। जो श्रावक युद्ध में बच गये वे अपना धर्म एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने से अविचल बने रहें। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए भव्य भवन, जमीन जायदाद छोड़ना स्वीकार कर लिया। उन्होंने दूसरों के सामने अपने हाथ नहीं फैलाये।

जब इन क्षेत्रों के अन्य विधर्मी साम्राज्यवादियों का आगमन हुआ तब उन लोगों ने भी सराक बन्धुओं को सन्मार्ग में विचलित कर हिंसात्मक कार्यों में प्रवृत्त करने का असफल प्रयास किया। यहाँ तक कि उनके द्वारा निर्मित जैन मंदिरों, वाचनालयों एवं धार्मिक ग्रन्थों को तहस-नहस कर दिया। तत्कालीन राजे महाराजे, सामन्त और बादशाह आदि अपने शासनकाल में सराक बन्धुओं के पूर्वजों से मद्य, मांस, मधु आदि का सेवन करने के लिए तथा उनकी बेटियों से जबरन शादी करने के लिए क्रूर अत्याचार करने लगे। सिलसिला बाद को भी चलता रहा। फिर भी ये सराक जंगल में रहकर मांसाहारियों के बीच विशुद्ध शाकाहारी बने रहे और अहिंसा धर्म का पूर्णतः पालन करते रहे। उन्हें जंगलों से निकलकर कभी नगरों में आने का अवसर नहीं मिला। खेती-बाड़ी पर ही ये अपना जीवन व्यतीत करते रहे, लेकिन अपने पुरखों के आदर्श संस्कारों से बंधे रहे। इससे उनके श्रावक होने का प्रमाण मिलता है।

सराक जाति के गोत्रों के अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि ये जैन धर्म के अनुयायी थे, क्योंकि इनके गोत्रों का नामकरण 24 तीर्थंकरों के नाम पर हुआ है। जैसे आदिदेव, शान्तिदेव, गौतम, धर्मदेव आदि। इनकी उपजातियाँ (सैक्ट्स) माँझी, मण्डल, चौधरी, आचार्य एवं अधिकारी आदि हैं।

जिओलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया (1886) के विवरणों में लिखा गया है कि ईसा पूर्व पाँचवीं छठी सदी में पारसनाथ और महावीर के उपदेश से बहुत से लोग अहिंसा धर्म में दीक्षित हुए। बंगाल और पुरी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर और 1908 और 1910 ई० में अंग्रेज विद्वान् मि० आई० टी० डैल्टन और एच० एम० रिजले ने लिखा है कि "सराकगण झारखण्ड क्षेत्र में बसने वाले सर्वप्रथम आर्य हैं, जो अहिंसा धर्म में पूर्ण आस्था रखते हैं।"

इन तथ्यों के आधार पर यह निर्विवाद है कि सराक जैनधर्म के सच्चे अनुयायी हैं और इसलिए जैन समाज के अभिन्न अंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलिंग, वंग एवं विहार सराकों के पिछड़ेपन के कारण

डा० जयकुमार जैन

महामन्त्री अ०भा०दि० जैन शास्त्रिपरिषद्

261/3 पटेल नगर, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

प्राचीन काल में उड़ीसा प्रदेश को कलिंग या त्रिकलिंग देश के नाम से जाना जाता था। उत्कल, गंगोद और कोसल इन तीन देशों का समावेश होने से कलिंग की त्रिकलिंग सार्थक संज्ञा थी। गंगोद कलिंग का उत्तरी सीमान्त भाग था जो गंगा नदी तक फैला हुआ था तथा कोसल दक्षिण मध्य में घने जंगलों वाला जंगम प्रदेश था। कलिंग के सर्वप्राचीन अवशेष जैन है तथा यहाँ तीर्थंकरों की पूजा होती रही है। कलिंग के इष्ट देवता को कलिंगजिन के नाम से जाना जाता था। कलिंगजिन की प्रतिमा किस तीर्थंकर की थी, यह कहना बड़ा जटिल है। इतिहासज्ञ विद्वान् उसे आदिनाथ, भद्राचलम् में उत्पन्न दशम तीर्थंकर शीतलनाथ या 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की मानते रहे हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ का बिहार कलिंग देश में हुआ था यह निर्विवाद कहा जा सकता है। महावीर का समवशरण भी यहाँ कुमारी पर्वत पर लगा था। प्रो० राखलदास बैनर्जी का कथन है कि उड़ीसा, प्रारम्भ से जैनधर्म का प्रमुख गढ़ था। उनके अनुसार यहाँ संस्कृति एवं सभ्यता का प्रवेश ही जैनों के द्वारा हुआ था। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार यहाँ एक विशिष्ट प्रकार का सूतीवस्त्र बनता था। वैदिक साहित्य में कलिंग देश का कोई उल्लेख नहीं है। महाभारत में यद्यपि एक स्थान पर कलिंग देश का उल्लेख हुआ है तथापि उसे जंगली प्रदेश कहा गया है तथा वहाँ के राजा का नाम चित्रांगद लिखा है। पाँचवीं-छठी शताब्दी में लिखित वैदिक धर्मसूत्रों में इसे एक म्लेच्छ देश की संज्ञा दी गयी है। स्पष्ट है कि इस परम्परा में कलिंग की चिरकाल तक उपेक्षा बनी रही। जैनधर्म यहाँ फला फूला। फिर क्या कारण था कि उसकी स्थिति वहाँ पिछड़ती गयी। विचार करने पर मेरी दृष्टि में निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं–

1. धर्मसूत्रों में कलिंग को एक म्लेच्छ देश कहकर वहाँ जाने वालों को पातकी कहा गया अतः यह प्रदेश भारत के अन्य प्रदेशों से पृथक् हो गया। धीरे-धीरे भारत के अन्य जैन श्रावकों का सम्पर्क भी उनसे समाप्त सा हो गया।

2. बिन्दुसार की कलिंग के साथ मित्रता थी, किन्तु ई० पू० 261 में अपने राज्य के आठवें वर्ष में ही अशोक ने कलिंग पर आक्रमण कर दिया। इस भीषण युद्ध में एक लाख व्यक्ति मारे गये। डेढ़ लाख बन्दी बना लिए गये तथा बहुत से बाद में युद्धजन्य विभीषिका के कारण मर गये। युद्ध के पश्चात् अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर लिया। इससे अनेक जैन श्रावकों ने धर्म परिवर्तन कर लिया तथा जिन्होंने धर्म-परिवर्तन नहीं किया, उन्हें मुख्य नगर छोड़कर भागना पड़ा होगा।

3. 166 ई० पू० में खारवेल के राज्याधिरूढ़ होने पर यद्यपि जैनधर्म को पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त हुई किन्तु कालान्तर में प्रथम शताब्दी के अन्त में खारवेल के वंशजों की दो शाखायें हो गयी तथा उनमें आत्मविनाशी संघर्ष हुआ। दोनों की फूट का लाभ उठाकर दक्षिणी सातवाहन नरेश शातकार्णि ने कलिंग पर विजय प्राप्त कर ली। अब यहाँ ब्राह्मण धर्म का प्रवेश हो गया। बौद्धौं और ब्राह्मणों दोनों के प्रतिरोधात्मक रवैये के कारण प्रायः जैन श्रावक धर्म विमुख होने लगे।

4. आठवीं शताब्दी तक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में जैन धर्म उड़ीसा (कलिंग) में टिका रहा, किन्तु इसी समय वाममार्ग एवं शैवों के प्रभाव ने उसे उखाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

5. 12वीं शताब्दी में भुवनेश्वर जिले के पुरी नामक स्थान में जगन्नाथ प्रतिष्ठा होने के उपरान्त इस प्रदेश का प्रधान धर्म जगन्नाथोपासक हो गया। इस समय जैनों ने वेगपूर्वक जैनधर्म को त्याग दिया।

उक्त परिस्थितियों में भी जो अडिग जैन धर्मानुयायी श्रावक बने रहे वे आज सराकों के रूप में हमारे मध्य विद्यमान हैं। उड़ीसा गजेटियर के लेखक डब्ल्यू० एच० हण्टर का कथन है कि इस देश के आदिम वासियों का धर्म जैन था। यहाँ तक कि यवन राज्यों ने भी इस धर्म के प्रति अनुकूल मार्ग अपनाया। आज यहाँ के सराकों में जिनेश, जिनगेश, साहू, काशी, नाग, सेनापति, कृष्ण, दास, गोत्र पाये जाते हैं। इनमें अधिकांश अपनी पहचान जैन के रूप में करते हैं जो इस तथ्य को विस्मृत कर चुके हैं, उन्हें आज स्मरण कराने की आवश्यकता है।

बिहार और बंगाल के नाम से पहचाने जाने वाले प्रदेशों को प्राचीन काल में प्राची या प्राच्य कहा जाता था। इसके अन्तर्गत बंगाल और वर्तमान बिहार (मगध एवं कुछ कोसल का भाग) समाविष्ट थे। वैदिक आर्य कलिंग की तरह वंग देश से भी परिचित नहीं थे। उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में वंग का उल्लेख भी म्लेच्छ (अनार्य) देश के रूप में हुआ है। धर्मसूत्रों में इस देश में जाने वालों को न केवल पातकी अपितु महापातकी कहा गया है। प्रो० राखालदास बैनर्जी का कहना है कि प्राचीन काल में गंगा के दक्षिणी भाग में जैन धर्म का खूब प्रचार-प्रसार था। डा० भाण्डारकर का भी स्पष्ट अभिमत है कि बंगाल-बिहार (प्राच्य देश) के लोगों को सर्वप्रथम जैनों ने ही सभ्यता सिखायी थी। 10-11वीं शताब्दी तक के कलावशेष प्राच्य देश में बिखरे पड़े हैं जो प्राचीन काल में इस देश में जैनधर्म के व्यापक प्रभाव की सूचना देते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि 700 ई० पूर्व के लगभग गौडनरेश आदिसूर ने कन्नौज से 5 ब्राह्मण परिवार तथा 5 कायस्थ परिवारों को लाकर बंगाल में बसाया था। 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल बिहार में अत्यन्त अराजकता थी। इसके बाद गोपाल नामक व्यक्ति ने अराजकता हटाकर राज्यभार सम्भाला तथा पालवंश की स्थापना की। इसके बाद धर्मपाल गद्दी पर बैठा। इसने जैन अधिष्ठानों को नष्ट कर उनके स्थान पर बौद्ध बिहार बनवाये। उसका पुत्र देवपाल (824-872 ई०) कट्टर बौद्ध था। उसने बिहार के मुंगेर (मुद्गगिरी) को राजधानी बनाया तथा बौद्धेतर धर्मों के चालीस विशाल केन्द्रों को मटियामेट कर दिया, जिनमें अधिकांश जैन थे। फिर भी 11-12वीं शताब्दी तक जैन धर्म का प्रभाव बना रहा। तत्पश्चात् कतिपय व्यापारी बंगाली एवं बिहारियों में ही यह सीमित हो गया। बंगाल और बिहार में विद्यमान सराक ये वही अवशिष्ट जैन श्रावक हैं जो काल के विकराल थपेड़े खाकर भी अपनी पहिचान कायम किये रहे हैं। इनके गोत्र अधिकांश जैन तीर्थंकरों या प्रभावक ऋषि-मुनियों के नाम पर हैं। आदिदेव, ऋषभदेव, अन्नादेव, शान्तिदेव, नेमनाथ, गौतम, शाण्डिल्य, वत्सराज, पाराशर, गार्गी आदि इनके गोत्र हैं।

अधिकांश सराक बन्धुओं ने अब तक अपनी जैन धर्मोचित आचार निष्ठा का परिपालन किया है, किन्तु क्षेत्र एवं काल की विषम परिस्थितियों से जो कारणवश च्युत हो गये हैं, उनके स्थितिकरण की आज महती आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक संस्कृति

डा० श्रीमती सरोज जैन
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
शास० कन्या महाविद्यालय, बीना (म०/प्र०)

सराक मूलतः श्रावक का ही अपभ्रंश रूप है। श्रावक अर्थात् श्रद्धावान्, विवेकवान् और क्रियावान्। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की उपासना अर्थात् उनके बताए हए मार्ग का अनुसरण करना ही श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य है। श्रावक के तीन प्रमुख लक्षण हैं–(1) जल छानकर पीना (2) रात्रि भोजन न करना! (3) प्रतिदिन देवदर्शन करना।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि अपने सिद्धांत, अपनी जीवन शैली और अपनी सात्विकता के कारण सराक अपने जीवन इतिहास में अद्वितीय है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी इन्होंने अपने धर्म का पालन किया। अपने संस्कारों के कारण ये कभी जैन संस्कृति से नहीं कटे। छना हुआ पानी पीना, रात्रि भोजन का त्याग तथा शुद्ध शाकाहारी भोजन करना। ये विशेषतायें इन्हें श्रावकोचित गुणों से विभूषित करती हैं। आचार-विचार और संस्कारों की दृष्टि से इनका जीवन श्रावकोचित गुणों से परिपूर्ण है। ये अष्टमूल गुणों का पालन करते हैं। शादी (विवाह) अपनी समाज में ही करते हैं। हिंसा वाचक शब्दों (काटो, काटना आदि) का प्रयोग भोजन शाला में नहीं करते हैं। सराक खेती करते हैं या फिर नौकरी करते हैं। अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते हैं। मुख्य रूप से बिहार, बंगाल और आसाम में निवास कर रहे अधिकांश सराक णमोकार मंत्र को जानते हैं। कहीं-कहीं ये भगवान विष्णु को भी मानते हैं। रामायण और महाभारत का वाचन भी करते हैं। विवाह सजातीय में ही किया करते हैं। विजातीय में विवाह करने वालों को समाज से निकाल दिया जाता है। इनके गोत्रआदिदेव, ऋषभदेव, शांतिदेव, अनन्तदेव आदि हैं। णमोकार मंत्र, 24 तीर्थंकरों के नाम की जप भी करते हैं।

सराक स्वभाव से सरल तथा अतिथि सत्कार प्रेमी होते हैं। स्नान करने के बाद ही रसोईघर में प्रवेश करना, विजातीय व्यक्ति द्वारा उपयोग किए जाने वाले बर्तनों को अंगियाना उनकी जीवन-शैली का ही एक अनिवार्य अंग है। डा० नीलम जैन ने इनके संस्कारगत सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए अपनी पुस्तक " सराक क्षेत्र" में लिखा है–"बिहार, बंगाल, उड़ीसा की वन्य जनजातियों के मध्य हजारों वर्षों से रहते हुए भी ये विशुद्ध शाकाहारी हैं। प्याज, लहसुन तक से परहेज रखने वाले ये सराक पानी भी छानकर पीते हैं तथा रात्रि भोजन भी नहीं करते हैं। स्वच्छता के प्रति इनकी सावधानी का यह आलम है कि बाहर से आये हुए पति तक को भोजन देने के उपरान्त पत्नी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह थाली हाथ से अशुद्ध होने के भय से स्पर्श नहीं करती है। कहीं आस-पास के ग्रामों मे जाने पर ये घर का अपने ही हाथ का बनाया हुआ भोजन प्रयुक्त करते हैं।" इनकी शाकाहारी जीवन-पद्धति को देखकर एक अंग्रेज अधिकारी ने कहा था-" मुझे इस बात पर हैरानी है कि ये सराक जाति के लोग झुंड में रहकर कैसे शुद्ध शकाहारी हैं।"

आज हमारा कर्त्तव्य यह है कि हमारे ही भाई जो हमसे बिछुड़ गये हैं, इन्हें हम अपनी समाज में, अपने परिवार में पुनः लाने हेतु प्रयास करें। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी आधुनिकता की चकाचौंध से बेखबर दयनीय जीवन-यापन करने वाले हमारे सराक बन्धु शिक्षा, शिल्प, तकनीक से अपरिचित हैं। भारतीय संस्कारों के सच्चे प्रति-निधि सराक आज भी गर्व से कहते हैं कि-" आज तक इनकी किसी भी पीढ़ी ने ऐसा अपराध नहीं किया जिससे जेल जाना पड़ा हो या सजा भुगतनी पड़ी हो। आपस में ही सुलझाने की कला में ये निपुण हैं" (सराक क्षेत्र, पृ० 8)

यद्यपि इस समय कुछ साधुओं, श्रीमंतों, विद्वानों और युवक वर्ग का ध्यान इस ओर गया है। परमपूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज ने सराकोद्धार के प्रति समाज को जो एक नयी चेतना दी है, वह निश्चय ही अभिवंदनीय है, क्योंकि इनके उत्थान से संस्कृति के विकास और संरक्षण को एक बल मिलेगा। डा० नीलम जैन के शब्दों में "हम अंधविश्वासी, रूढ़िवादी कहकर इनको नकार नहीं सकते। इनकी जीवन-शैली, नये-नये चिन्तन को विशाल भूमि देती है। लाखों लोगों का विभिन्न प्रान्तीय संस्कृति के मध्य रहते हुए भी समान आचरण संहिता एवं सामाजिक विश्वासों के साथ जीवन पर्याप्त शोध का विषय है। जब भी इस क्षेत्र की ओर किसी समाजशास्त्री, बुद्धिजीवी, इतिहासविद्, पुरातत्ववेत्ता की दृष्टि पड़ी, वह इन सराकों के संस्कारों से प्रभावित हुआ है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक संस्कृति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डा० गोकुलप्रसाद जैन,
उपाध्यक्ष, वीर सेवामन्दिर, नई दिल्ली।

सराक जाति पार्श्वनाथ के तीर्थकाल के प्राचीन श्रावकों की वंश परम्परा की उत्तराधिकारी है जो बंगाल, बिहार और उड़ीसा के लगभग पन्द्रह जिलों में निवास करती है और जिसकी अनुमानित संख्या लगभग पन्द्रह लाख है। ये लोग आचरण की दृष्टि से पूरे जैन हैं, पूर्णतया शाकाहारी और अहिंसावादी हैं किन्तु जो जैनधर्म को भूल गये हैं। ये पार्श्वनाथ और महावीर को अपना कुलदेवता मानते हैं। ये आदिवासी और जनजाति की कोटि में आते हैं। इनके क्षेत्रों में जैन मन्दिरों की कमी है, जैन साधुसन्तों के विहार नहीं होते हैं, अतः ये शताब्दियों से संभवतः लगभग दो हजार वर्षों से देश के व्यापक जैन समाज से सर्वथा अलग थलग पड़ गये हैं। इनमें शिक्षा-दीक्षा का सर्वथा अभाव है।

सराक लोग मूल मार्गों से अलग प्रायः जंगलों में रहते हैं जिनके रास्ते तक टूटे फूटे हैं। पिछले लगभग दो हजार वर्षों में देश में व्यवस्थित शासन के अभाव, अराजकता, राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक और धार्मिक उपालव आदि परिस्थितियों में धर्मद्रोहियों और विधर्मियों द्वारा व्यापक नरसंहार एवं सामूहिक वध से बचने के लिए इन्होंने अपने आप को घने जंगलों में छिपाया और सैकड़ों वर्षों बाद अनुकूल परिस्थिति आने पर लोग अर्धसभ्य आदिवासी अवस्था में प्रकाश में आये।

शताब्दियों पर्यन्त कामरूप प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि में नन्दवंश मौर्यवंश आदि के सहिष्णु, उदारवादी जनहितैषी जैन बहुल शासन के पश्चात् सन् 187 ई० में अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की जब उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा हत्या करके शुंग वंश के ब्राह्मण शासन की स्थापना की गयी तो पूर्व भारत में जैन राजाओं और जैन अमात्यों के शासन का अन्त हो गया और अराजकता का युग आरम्भ हुआ तथा संकीर्ण असहिष्णु, ब्राह्मण, बौद्ध और अन्ततः मुस्लिम शासकों का वर्चस्व स्थापित हुआ। घोर अराजकता और अस्थिरता की परिस्थिति में आने वाले संकटों की कल्पना करके जैने आचार्य, त्यागीवर्ग, जैन उपदेशक, कामरूप प्रदेश और पूर्व भारत को शनैः-शनैः त्याग कर चले गये। जैन श्रमणों और जैन साध्वीवर्ग के मंगल विहार और उपदेश यात्रायें स्थगित हो गयी। धर्म पालन में बाधा उत्पन्न होने लगी। इस विपदावस्था में जैन श्रावकों को उत्तरोत्तर तीव्र यातनायें भुगतनी पड़ी। राज्य परिवर्तनों के नाटक होने लगे। घोर अस्थिरता की वीभत्स परिस्थिति पैदा हो गयी। धर्म विरोधियों के निरन्तर बढ़ते दबाव के कारण नरसंहारों से बचने के लिए इन्हें या तो धर्माचरण बदलना पड़ा या पलायन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर घनघोर जंगलों में छिपना पड़ा। बारम्बार के बाह्य आक्रमणों से परिस्थिति विकट होती गयी। श्रावकों के पास न तो धर्मशास्त्र रह गये और न ग्रंथ, साहित्य और धर्म रक्षा हेतु बार्म्बार स्थान परिवर्तन करने पड़ते थे तब विरोधी मतवाले उनके मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट कर देते थे।

नए स्थानों पर बसने पर वहाँ के जमींदारों का आश्रय लेना पड़ता था और उनके मुताबिक धार्मिक और व्यावहारिक क्रियायें करनी पड़ती थी। दूसरों का हस्तक्षेप उन्हें मानना पड़ता था परिणामतः वे जैन परम्परा की धार्मिक उपासना से दूर होते गए। फिर भी उन लोगों को अपनी अहिंसा वृत्ति, शुद्ध खान-पान और जीवन्त लक्षणों को नहीं छोड़ा।

प्राचीन काल में भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में जैन धर्मानुयायियों की बहुत बड़ी संख्या थी। उत्तर भारत में अधिकांश तीर्थंकरों का जन्म और विहार हुआ था। स्थान-स्थान पर उनका समवसरण लगता था जहाँ उनके उपदेश होते थे। अतः सम्पूर्ण उत्तर भारत में जैनधर्म का बड़ा प्रचार था। पूर्व भारत में पार्श्वनाथ और महावीर की विशेष रूप से विहार हुआ था और जनता पर उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व और लोक कल्याणकारी उपदेश का गहरा प्रभाव पड़ा था। इसका परिगाम यह हुआ कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्त तो जैनधर्म के रंग में रंग गये थे। दक्षिण भारत में स्वयं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मुनि बनकर बारह हजार साधुओं के साथ गये। वहाँ साधु श्रुतकेवली भद्रबाहु गुरु की आज्ञा से दक्षिण के प्रान्तों में विशेषतः कनार्टक और तमिल देश टोलियों में बंट गये। उन साधुओं के त्यागमय और निस्पृह आचार-विचार तथा उनके बुद्धिगम्य उपदेशों से प्रभावित होकर इन दो प्रान्तों की अधिकांश जनता ने और राजाओं ने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। उनके आचार्यों ने तो कई राज्यवंशों ने जैन आचार्यों को गुरु एवं राजगुरु भी बनाया। इसी प्रकार पश्चिम भारत में भट्टारकों और श्वेताम्बर आचार्य ने अपनी विद्वता और निमित्त ज्ञान एवं यान्त्रिक बल से राजा और प्रजा दोनों को अनेक प्रकार से अनुगृहीत किया और अपना शिष्य बना लिया। आठ-दस शताब्दी पूर्व तक प्रायः सम्पूर्ण भारत में यही स्थिति बनी रही।

कालान्तर में जैनधर्म का प्रभाव कम होता गया और जैन धर्मानुयायियों की संख्या अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग कारणों से क्षीण होती गयी तथा कुछ प्रान्तों में तो जैनधर्मानुयायी प्रायः नामशेष हो गए। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए जैनों को अनेक अत्याचार सहने पड़े, उन्हें बलात् धर्म परिवर्तन करने को बाध्य होना पड़ा, अनकों को अपने धर्मप्रेम का मूल्य प्राण देकर चुकाना पड़ा। बलात् धर्म परिवर्तन करने वाले कुछ जैन हृदय से तो जैनधर्म को प्रेम करते थे, उनके सिद्धान्तों को अपने आत्मकल्याण के लिए आवश्यक समझते थे। ऊपर से उन्हें दूसरे धर्म का पालन करना पड़ता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर प्रान्त में ऐसे दास जैनों का एक बड़ा वर्ग रह गया और देश भर में अनेक ऐसी जातियाँ और आदिम समाज हैं जो नाम से तो अपने आप को जैन नहीं कहता था, किन्तु उनके संस्कार जैनधर्म के ही बने रहे। अभी तक ऐसी जातियों की पूरी तरह खोज नहीं हो पायी है किन्तु जितना पता चल सका है उसके अनुसार तमिलनाडु के नयनार, उत्तराखण्ड के डिमरी, बिहार, बंगाल, उड़ीसा के सराक तथा रंगिया और मेदिनीपुर जिले के सद्गोप ऐसे ही हैं। तमिलनाडु के नयनार (नैनार) अर्थ ही जैन है। इस प्रान्त के जैन लोग अपने तीर्थंकरों और मुनियों को नयनार ही कहते आये, उनके प्राचीन जैन साहित्य में अर्हन्तमन्दिर को नयनार मन्दिर कहा जाता है। तमिलनाडु के अनेक प्राचीन शिलालेखों में जैन मुनियों को नयनार और जैन मन्दिर को नयनार मन्दिर कहा गया है और तीर्थंकरों को नयनार कहा गया है।

टिहरी गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) में और उसके आसपास ऐसी ही एक जाति रहती है जो डिमरी कहलाती है। डिमरी शब्द दिगम्बरी से बिगड़ते-बिगड़ते बना है। उनके संस्कार जैनों बहुत मिलते-जुलते हैं। प्राचीन काल में बदरीनाथ और केदारनाथ धामों के पुजारी डिमरी ही रहते थे। जबसे आदि शंकराचार्य ने इस मन्दिर पर अधिकार किया तब से इतना ही अन्तर पड़ा है कि यहाँ दो पुजारी रहने लगे हैं, एक डिमरी और दूसरा दक्षिणात्य। शीलकाल के प्रारम्भ के बदरीनाथ की उत्सवमति को डिमरी जाति का पुजारी ही जोशी मठ ले जाता है। यही पुजारी बदरीनाथ की मूर्ति की पूजा करता है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वह रात्रि में भोजन नहीं करता, दिन में ही करता है; वह भी एक बार, वह आलू आदि कन्द भी नहीं खाता, अन्य डिमरी लोगों का आचार-व्यवहार देखने से उनमें जैनत्व की छाप दिखायी पड़ती है।

इन जातियों में सबसे अधिक संख्या सराक जाति की है। इन्हें पहले श्रावक कहा जाता था। उड़ीसा में इस प्रकार की कई जातियाँ हैं जो पहले जैन थी। ये जातियाँ हैं—अखि, जुलाहे, रगणी जुलाहे, सराक, मंजिनाथ अलेखी आदि जातियाँ (सम्प्रदाय)। बिहार में इस प्रकार की जातियों में जथारिया, भूमिहार और सराक है और बंगाल में सराक जाति है, मेदिनीपुर जिले में सद्गोप है। इन जैनमूलक जातियों के लोग विवाह और शुद्धिक्रिया ब्राह्मणों से नहीं कराते, बल्कि उनमें से ही कोई शिक्षित वृद्ध यह कार्य सम्पन्न करा देता है। कुछ जिलों में राक को 'सोराख' कहा जाता है। सराक पंच उदुम्बर फल नहीं खाते, दिन में खाना अच्छा मानते हैं तथा प्याज, आलू और गोभी नहीं खाते और पानी छानकर पीते हैं। ये लोग पूर्णतया शाकाहारी हैं और पशुरक्षा या जीवनरक्षा की ओर उनका विशेष ध्यान है।

सराकों के गोत्र हैं आदिदेव, धर्मदेव, शान्तिदेव, ऋषभदेव, शाण्डिल्य, काश्यप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तदेव, भारद्वाज, क्षेमदेव, कृष्णदेव, गौतम, ब्रह्मपुरी, वत्सराज, मार्गी, जिगनेश आदि जातीय स्थान की अपेक्षा इनके चार थोंक या पोल हैं–(1) पाँच कोरिया–मानभूम के पश्चिम राज्य के निवासी (2) नदी पारिया–वे सराक जो दामोदर नदी के दाहिने तट पर रहते हैं। (3) वीरभूमियाँ–वीरभूमि के रहने वाले सराक (4) तमारिया–ये सराक राँची के तमार परगने के निवासी है। इनके अतिरिक्त सारकी, तांतीया, तांती सराक भी हैं। यह जाति बुनने का काम करती है और जिला बांकुड़ा के विष्णुपुर भाग में रहती है। इनमें चार भाग हैं–अश्विनी तांती, पात्रा, उत्तरकुली और मन्दरानी। सन्थाल परगने को फूल सारेकी, सिखरिया, कन्दल और सारकी तांती कहते हैं।

नवादीह, देवलडीह (सिंहभूम जिला) आदि में श्रावकों में गृहस्थाचार्य भी पाये जाते हैं। ये लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं। पार्श्वनाथ की प्रायः धातु की प्रतिमा रखते हैं और उनका अभिषेक भी करते हैं। ये मांझी, महापात्र, पात्रदूत, सान्तरा, वर्धमान महापात्र, आहंबुद्धि, सामग्री, देवता, प्रामाणिक, आचार्य, बेहेरा, दास, साधुपुष्टि, महात्र, मोहता, मण्डल, वैशाखा, राउत, नायक, निशंक, मौधुरी, मुदी, सेनापति, उच्च, आदि भिन्न-भिन्न संज्ञाधारी हैं।

वस्तुतः बिहार, बंगाल, उड़ीसा और उनके परिवर्ती क्षेत्रों में हजारों वर्षों से जैन समाज की महती प्रभावना महावीर पूर्वकाल से ही रही है। गुप्तकाल में यहाँ अनेक विशाल बौद्ध विहार और देवायतन होने के प्रमाण मिलते हैं। चीनी यात्री हेनसांग ने जब छठी शताब्दी में इस परिक्षेत्र में यात्रा की तो उसने यहाँ अनेकानेक जैन मन्दिर, जैन बस्तियाँ देखीं और निर्ग्रन्थ जैन मुनियों को यहाँ विहार करते देखा था।

वीरभूम, वर्धमान, सिंहभूम, मानभूम आदि जो परिक्षेत्रादि नाम यहाँ प्रचलित वे महावीर के अनुकरण मूलक नाम हैं जो यहाँ जैनधर्म का व्यापक प्रभाव होता दर्शित करते हैं। इस सम्पूर्ण सराकभूमि में सर्वत्र हजारों जैन तीर्थों के अवशेष, जैन विहारों के खण्डहर, उजड़ी हुई जैन बस्तियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि यहाँ कितना जैन पुरातात्विक वैभव विद्यमान है। इस क्षेत्र में जैन तीर्थंकरों, ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर आदि की हजारों प्रतिमायें तो भैरव आदि देवताओं के नाम में पूजी जा रही है।

सराक लोग बड़े शान्त नागरिक हैं। वे झगड़ा फसाद से बचते हैं और पड़ौसियों के साथ प्रेमपूर्वक रहते हैं। इनके वृद्ध लोगों से पता चलता है कि मूलतः ये लोग सरयू नदी पर अयोध्या के गाजीपुर के निकटवर्ती प्रदेशों के रहने वाले थे, और अग्रवाल थे। इनके व्यापार के निमित्त इधर आये थे। वामन घाटी, ताम्रशासन पत्र (बारहवीं शताब्दी) से ज्ञात होता है कि मयूरभंग के मंजवंशीय राजाओं ने, श्रावकों (सराकों) को ग्राम दिये थे श्रावकों ने जंगलों में तांबे की खानें ढूँढी और अपनी सारी शक्ति लगा दी। इन खानों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का विकास किया। किन्तु विश्वास किया जाता है कि सन् 1023 ई० में चोल राजेन्द्र देव ने बंगाल के नरेश महीपाल पर आक्रमण किया, तब आते-जाते दोनों ही चोलसेना ने धर्मद्वेषवश सराकों के बनवाये हुए मन्दिरों का विध्वंस किया और नरसंहार किये।

इसके बाद पाण्ड्य नरेशों ने लिंगायत शैवसम्प्रदाय के उन्माद से जैन धर्मायतनों का विनाश किया और सराकों को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जिन सराकों ने अपना धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं किया, उन पर भारी अत्याचार किए गए।

जब दक्षिण की ओर से शैव धर्म और आन्ध्रप्रदेश की ओर से वैष्णव धर्म में झंझावत प्रबल वेग से बढ़ता हुआ, उड़ीसा, बंगाल और उत्तरबिहार में आया, उस समय उसके सामने जो झुक गये, वे बच गये जिन्होंने कुछ साहस बटोरकर उनके सामने खड़े होने का साहस किया, वे नष्ट हो गये या मार दिये गये। अनेक बार तो इन श्रावकों (सराकों) को अपना स्थान, धन्धा, धर्मालय, सब कुछ छोड़कर भागना पड़ा। धार्मिक विप्लव बंगाल, उत्तर बिहार और उड़ीसा में श्रावकों का सफाया करके माना। ये विस्थापित लोग जहाँ-तहाँ प्रायः गाँवों में सुरक्षा की दृष्टि से बस गये। व्यापार छोड़कर खेती-बाड़ी का धन्धा करने लगे। धर्म छोड़कर भी संस्कार न छूटे और हिन्दू कहलाकर भी अपने आपको श्रावक अथवा सराक ही कहते रहे। ऐसा करने पर उनका उद्देश्य संभवतः यह रहा हो कि जब साम्प्रदायिकता के यह उन्माद और अत्याचार समाप्त हो जायेंगे और अनूकूल अवसर आयेगा तब पुनः अपना मूल धर्म जैन धर्म ग्रहण कर लेंगे।

किन्तु लगता है कि अनुकूल समय नहीं आ पाया और ये लाखों निरीह सराक जैनधर्म की धारा से पृथक् हो गये। इन लोगों को हिन्दू धर्म अपनाना पड़ा। सिर्फ मन से जैन संस्कारों की पूँजी अभी इनके पास बची हुई है, जिसके कारण यह पता चलता है कि मूलतः इनके पूर्वज जैन थे और ये उस प्रदेश से आये थे जहाँ (अयोध्या, रतनपुरी और श्रावस्ती में) सात तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे और जिनके ये वंशज हैं। इनके बीच भगवान पार्श्वनाथ ने वर्षों तक विहार और उपदेश किया था। इनके पूर्वज सर्राफा और व्यापार की तलाश में कभी आये थे। आकर उन्होंने खूब कमाया जिसके प्रमाणस्वरूप इन तीन प्रान्तों में इधर-उधर बिखरे पड़े बहुमूल्य जैन मन्दिर, कलापूर्ण कृति और अन्य विपुल जैन कीर्तियाँ हैं। किन्तु यहाँ आकर उन्होंने पाया क्या, खोया ही। धर्म खोया, जन्मस्थान खोया, अपना व्यवसाय खोया और मिला खेती-बाड़ी का धन्धा, जुलाहे का धन्धा, लेन-देन और अन्यान्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय अपने व्यवसायों में सराक जाति को अच्छी योग्यता प्राप्त थी किन्तु अब ये लोग उनसे दूर, सभ्यता एवं शिक्षा के साधनों से वंचित होकर अर्धसभ्य अवस्था में छोटे-छोटे गाँवों में आदिवासियों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु इस दुरवस्था में भी सराकों ने अपने जैन धर्म के पुराने संस्कारों को नहीं छोड़ा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब समय अनुकूल है। इन्हें इनका विगत गौरव, इनके पूर्वजों का धर्म और विरासत में मिले संस्कारों का स्मरण दिलाया जाये। जैन समाज के लोगों का धर्मवात्सल्य मिलता तो ये पुनः अपने मूल धर्म को स्वीकर कर सकते हैं और इन प्रान्तों में बिखरी हुई प्राचीन जैनकला सम्पदा को उचित एवं व्यवस्थित रूप दे सकते हैं। आवश्यकता है इस बात की कि प्रबुद्ध जैन समाज आये, आकर अपने बिछुड़े हुए धर्म बन्धुओं को गले लगाये और इनका पुनरुद्धार करे।

बंगाल में सराक संस्कृति–

बंग प्रदेश में जैनधर्म के प्रचार के कुछ ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार अब पार्श्वनाथ और महावीर ने बंग प्रदेश में विहार और धर्मोपदेश किया था। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ के धर्मप्रवचनों ने बंगदेश में सहस्रों व्यक्तियों के हृदयों में जैनधर्म की अमिट छाप अंकित कर दी थी। पार्श्वनाथ के विहार प्रसंग में ताम्रलिपि और कोपकरक स्थानों का भी उल्लेख आता है। इन स्थानों पर वे गये थे। पार्श्वनाथ के पश्चात् महावीर ने बंग, मगध और कलिंग के समान बंगदेश में भी विहार करके जनता को जैनधर्म की शिक्षाओं से प्रभावित किया था। महावीर के व्यक्तित्व और उपदेश का प्रभाव जनता पर अत्यधिक पड़ा। मानभूमि, वर्धमान आदिनगरों के नाम महावीर के नाम पर ही रखे गये। बंगाल के इन स्थानों और इनके निकटवर्ती जिलों में अनेक प्राचीन जैन मन्दिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। इन जिलों में अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। बंगाल के विभिन्न भागों में फैले हुए सराक बन्धु पार्श्वनाथ और महावीर की धर्म परम्परा के अवशेष हैं। उन लोगों ने उस क्षेत्र में हजारों जैन मन्दिर बनवाये और जैन तीर्थंकरों, गणधरों, निर्ग्रन्थों आदि की हजारों मूर्तियाँ स्थापित कराई जो आज भी इस क्षेत्र में उपलब्ध होती हैं।

पहाड़पुर (राजशाही) में उपलब्ध 479 ईसवी के एक ताम्रपत्र के अनुसार पहाड़पुर में एकविशाल जैन विहार विद्यमान था, जिसमें 5000 मुनि ध्यान-अध्ययन करते थे। इसके ध्वंसावशेष चारों ओर बिखरे पड़े हैं। प्राचीन काल में वह वटगोहाली स्थित पंचस्तूपान्वय के निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनंदि का जैन विहार कहलाता था। उसके मध्य में स्वस्तिक के आकार का एक तीन मंजिला सर्वतोभद्र मन्दिर था। इसकी स्थापना पौण्ड्र- वर्धन निवासी आचार्य अर्हद्बली ने की थी। पौण्ड्रवर्धन प्राचीन काल में जैन संस्कृति का विशाल केन्द्र था और राजनैतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण था। श्रुतकेवली भद्रबाहू और आचार्य अर्हद्बली इसी नगर के निवासी थे। वटगोहाली स्थित उस विहार की जैन विद्याकेन्द्र के रूप में ख्याति गुप्त काल तक रही, बाद में बंगाल के धर्मान्ध हिन्दू राजा शशांक ने बटगोहाली जैन विहार को भारी क्षति पहुँचायी और उस पर ब्राह्मणों का अधिकार हो गया। बाद में कट्टर बौद्ध पालवंशी नरेश धर्मपल ने 770 ईसवी में उक्त जैन बिहार को समीपस्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमपुर स्थित विशाल बौद्ध विहार में सम्मिलित कर लिया। तदनन्तर मुस्लिम शासकों ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पहाड़पुर (बंगलादेश) के उक्त अभिलेख से वहाँ पर सैकड़ों तीर्थंकर प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना की सिद्ध होती है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री युवान च्वांग जब बंग्लादेश में विहार कर रहा था, तब उसने बंगाल के विभिन्न भागों में निर्मित जैन साधुओं को सर्वत्र विहार करते हुए देखा था और सभी स्थानों पर जैन श्रावकों का निवास पाया था। बंगाल में जैनधर्म के व्यापक प्रचार के संकेत नौवीं शती कि लिखे जैन ग्रन्थ कथाकोश से भी प्राप्त होते हैं जिसमें उल्लेख है कि जैन आचार्य भद्रबाहू उत्तरी बंगाल के देवकोट (कोटिवर्ष) में पैदा हुए थे। इसी प्रकार बंगाल के विभिन्न भागों की खुदाई से भी नौवीं-दसवीं शती के बहुत से जैन अभिलेखों और मूर्तियाँ आदि प्राप्त हुई हैं जो राजशाही संग्रहालय में सुरक्षित है। ऋषभदेव की दूसरी कायोत्सर्ग प्रतिमा राजशाही के मदांइल नामक स्थान से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार पुरुलिया, बाकुरा एवं मिदनापुर स्थित विभिन्न स्थानों से अनेक प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इस सम्बन्ध में डा० भण्डारकर का विचार है कि जब विहार एवं कौशल क्षेत्र को गौतम बुद्ध ने अपना प्रचार केन्द्र बना लिया तो महावीर ने बंगाल को ही सर्वप्रथम अपना केन्द्र चुना था।

वस्तुतः बंग प्रदेश के मेदिनीपुर, पुरुलिया, मानभूम, सिंहभूम, वर्धमान आदि कई जिलों में सराक बड़ी संख्या में निवास करते हैं, जहाँ प्राचीन जैन मन्दिर, उनके अवशेष और मूर्तियाँ प्राप्त होती है। कुछ स्थानों पर जैन मूर्तियों को जैनेतर लोग देवी देवताओं के विभिन्न कतिपय नामों से पूजते हैं।

मानभूम जिले में सराक विशाल संख्या में निवास करते हैं। मिस्टर उपलैण्ड ने सन् में मानभूम गजेटियर प्रकाशित किया था। उसमें सराक जीवन और संस्कृति पर प्रामाणिक विवरण प्राप्त होते हैं। उसमें लिखा है कि ये लोग मूलतः जैन हैं तथा सराक और भूमिजन एक ही जाति की संतान हैं। सराक जाति मानभूम जिले मे पांचवीं-छठी शताब्दी ईसापूर्व से रहते हैं। प्रोफेसर विलसन ने लिखा है। कि महावीर साधुदशा में वज्रभूति और शुभ्रभूमि के देशों से आये थे। कर्नल डैल्टन बंगाल एशियाटिक सोसायटी जर्नल में सन् 1868 में सराकों के अहिंसा प्रेम और शान्तिप्रियता के सम्बन्ध में एक विस्तृत शोधपूर्ण लेख लिखा था। सराक यह बात विश्वास के साथ कहते हैं कि वे अग्रवाल थे, पार्श्वनाथ की पूजा करते थे और सरयूनदी के किनारे रहते थे। सरयूगाजीपुर के पास जहाँ गंगा हैं, वहाँ वे व्यापार और सर्राफ का धन्धा करते थे।

मानभूम जिले में अनेक स्थानों पर सराक और प्रचीन जैन मन्दिरों के अवशेष मिले हैं। बलरामपुर में वैजनाथ के मन्दिर जैसा एक मन्दिर पुराने जैन मन्दिर को तोड़कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनाया गया है। इसमें अभी तक नग्न मूर्तियाँ और मन्दिरों के अवशेष हैं। स्वर्णरेखा नदी के किनारे डलकापुर या दयापुर डलमी नामक नगर में सराकों के जैन मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं। डलमी के देवली गाँव, ईसागढ़ के पास देवल टांड में सराकों के जैन मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं। दामोदर नदी के दोनों तटों पर चेवगाँव गढ़ और वैलेजा में प्राचीन नग्न मन्दिर थे। यहाँ दोनों तटों पर लगभग 20 अन्य जैन मन्दिर हैं और पराभूम परगने के पवनपुर गाँव में बहुत से जैन मन्दिरों के चित्र हैं।

पाकवीर (पुरुलिया) तथा पोंचा के पूर्व के बहुत से जैन प्राचीन मन्दिर और जैन कला सामग्री है। यहाँ स्थित ऋषभमूर्ति को अजैन, जनता भैरवदेव मानकर पूजती है। यहाँ पर सोलह मन्दिर थे जहाँ सराकों का केन्द्र रहा होगा। यहाँ पार्श्वनाथ और महावीर का विहार हुआ था जिसने सम्बन्धित विशेष घटनाओं की स्मृति में ये मन्दिर बनवाये होंगे।

सिंहभूम के सम्बन्ध में मेजर रिकल ने जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी 1840 (पृ० 690) में लिखा था कि सिंहभूम सराकों के हाथ में था जो अब करीब-करीब नहीं रहे। सराको को सताकर कोलेहान से निकाला गया।

पुरूलिया से 8 मील दूर अनाईजामाबाद खुदाई में ग्यारह जैन मन्दिर और अनेक जैन मूर्तियाँ निकली थी। वर्धमान जिले से आसनसोल के निकट पुच्छा के गाँव के बाहर टीले (देवलगढ़, राजवाड़ा) की खुदाई से अनेक जैन प्रतिमायें निकली थी। कोयल घाट (खड़गपुर) में खुदाई के समय तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की एक प्रतिमा निकली थी।

बंगाल के सराक मानते हैं कि वे सरावगी हैं और उनके वंशज सरावगी जैन थे, परन्तु जैन समाज से सम्पर्क टूट जाने के करण वे लोग बिछुड़ गये उनकी शादियाँ अजैनों में होने लगी, साधु सन्तों ने उनकी उपेक्षा कर दी तो वे लोग जैनधर्म त्याग बैठे। ऐसे परिवार सम्पूर्ण बंगाल में अर्थात् रघुनाथपुर, मानबाजार, पुरूलिया, कलकत्ता, घाटशिला, दीपा (मेदिनीपुर) बनाडिया कुल्टी, किरी, कालरोही, लावदा, चन्द्रकुना आदि में हैं। बहुलाडा (जिला बाकुण्डा) में विशाल जैन मन्दिर है जिसमें 1800 वर्ष पुरानी प्राचीन पार्श्वनाथ स्वामी की श्यामवर्ण प्रतिमा है। यहाँ के सरस्वतीभवन में प्राचीन पाण्डुलिपियाँ इस प्रकार गोपीवल्लभपुर, बेलदा (मेदिनीपुर) आदि में सराकों के निवास देवालय है। इस प्रकार, बंगप्रदेश में जैनधर्म की बड़ी प्रभावना एवं प्रचार था। यहाँ जैनधर्म अनेक सुप्रसिद्ध केन्द्र थे।

उड़ीसा में सराक संस्कृति

प्राचीन काल में कलिंग जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। बंगदेश और कलिंग में बिहार की भाँति तीर्थंकरों का कोई कल्याणक तो नहीं हुआ, किन्तु तीर्थंकरों का विहार, कलिंग में होता रहा। अंग बंग, कलिंग और मगध व्रात्य श्रमणों के केन्द्र थे तथा तीर्थंकरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विहार से इन प्रदेशों में जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार हुआ। अंग और बंग के समान कलिंग में भी ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर का विहार हुआ था। डा० नगेन्द्रनाथ वसु के अनुसार पार्श्वनाथ के तीर्थकाल में मयूरमंज में कुसुम्ब नाम क्षत्रियों का राज्य था। यह राज्य वंश पार्श्वनाथ का अनुयायी था। आवश्यक सूत्र में लिखा है कि महावीर ने तोषल में अपने धर्म का प्रचार किया था। तोषल नरेश महावीर के पिता सिद्धार्थ के बन्धु थे। तोषल नरेश ने भगवान महावीर को अपने राज्य में धर्म प्रचार के लिए आमन्त्रित किया था।

महावीर ने कलिंग में जाकर धर्मोपदेश किया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर तोषल नरेश ने कुमारी पर्वत पर महावीर से मुनि दीक्षा ले ली और तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की। उनके निर्वाण के कारण कुमारी पर्वत निर्वाण क्षेत्र बन गया। संभवतः उड़ीसा में कुमारी पर्वत (खण्डगिरी, उदयगिरी) ही एकमात्र निर्वाण क्षेत्र है।

महावीर द्वारा प्रचारित धर्म कलिंग में शताब्दियों तक बना रहा। जैनधर्म वहाँ का राष्ट्रधर्म बन गया था। जब महापद्मनन्द कलिंग को पराजित करके 'कलिंग जिन' प्रतिमा को अपने साथ पाटलिपुत्र ले गया तो समस्त कलिंग शोकसागर में डूब गया। 'कलिंग जिन' की प्रतिमा कलिंग के राष्ट्रदेवता की प्रतिमा थी और समस्त कलिंग वासियों की आराध्य प्रतिमा थी। इस घटना के प्रायः तीन सौ वर्ष बाद सम्राट खारवेल ने मगध से इसका बदला लिया। उसने मगध सम्राट वहसतिमित्र को करारी पराजय दी और 'कलिंग जिन' प्रतिमा वह अपने साथ ले गया। कलिंग वासी अपने आराध्य को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण राष्ट्र ने राष्ट्रीय उत्सव मनाया।

इस घटना से यह निष्कर्ष निकलता है कि कलिंग में जैनधर्म शताब्दियों तक प्रमुख-धर्म के रूप में रहा। उदयगिरी खण्डगिरी की गुफाओं में सैकड़ों मुनि तपस्या किया करते थे। उनके धर्म सम्मेलन भी होते थे। आज कलिंग में विभिन्न स्थानों पर जैन मूर्तियाँ तो सर्वत्र उत्खनन के परिणामस्वरूप मिलती हैं, किन्तु कोई प्राचीन जैन मन्दिर देखने में नहीं आया। ऐसा लगता है कि बंगनरेश शशांक, चौलराज राजेन्द्र पाण्ड्य राजा जटावमनि आदि धर्मद्वेषी नरेशों ने जैन मन्दिरों का व्यापक विनाश कर दिया अथवा उन मन्दिरों को शैव मन्दिर बना लिया। विनाश का यह चक्र छठी शताब्दी से आरम्भ हुआ जो निरन्तर चलता ही रहा। इस दुष्चक्र के फलस्वरूप कलिंग से जैनों को या तो प्राणरक्षार्थ पलायन करना पड़ा, अन्यथा उन्हें बलात् धर्मपरिवर्तन करने को विवश होना पड़ा। इस धर्मोन्माद में कितने धर्माग्रही लागों को प्राण देने पड़े। इसकी संख्या का पता नहीं लगाया जा सकता। इसके पूर्व भी मौर्य सम्राट अशोक ने युद्धों का सहारा लिया था और कलिंग विजय प्राप्त की थी। इन युद्धों में लाखों जैन श्रावकों को मौत के घाट उतार दिया गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था, क्योंकि श्रावक सभी अहिंसावादी थे, इसलिए हथियार नहीं उठा सके। बचे हुए श्रावक व्यापक नरसंहारों तथा सम्पूर्ण विनाश लीला से बचने के लिए अराजकता की स्थिति में जंगलों में भाग गये। इसके बाद भी अत्याचार होते रहे। खेती-बाड़ी आदि में लग करके जीवन यापन करते रहे। उन्हें नगरों में आने का अवसर ही नहीं मिला। वे अपने पूर्वजों के संस्कारों से बंधे रहे और पर्वतीय प्रदेशों में रहे और अन्ततोगत्वा सराक के रूप में प्रकट हुए।

मुख्यतः सराकों की दो जातियाँ हैं–एक रंगूनी तांती और दूसरी सराक तांती। रंगूनी तांती के लोग ब्राह्मणों के हाथ का पानी भी नहीं पीते, शुद्ध शाकाहारी हैं और जल छानकर पीते हैं। ये लोग रात्रि भोजन नहीं करते। कार्तिकबदी 15वीं को दीपक जलाकर आपस में लड्डू बाँटते हैं। वर्ष में एक बार उदयगिरी-खण्डगिरी की यात्रा को जाते हैं। ये दिगम्बर गुरु के उपासक हैं जिसे ये लोग 'अलक' कहते हैं जो शब्द ऐलक का अपभ्रंश प्रतीत होता है। ये साधु केवल कोपीन धारण करते हैं, मोर का पंखा और नारियल का कमण्डल धारण करते हैं, दिन में एक बार भोजन करते हैं। रंगूनी तांती को रंगिया भी कहा गया है। दूसरी जाति सराक तांती है। इनका व्यवसाय कपड़ा बुनने का है। ये लोग पंचउदुम्बर/प्याज, गोभी, आलू आदि नहीं खाते और माघ शुक्ल सप्तमी को खण्डगिरी की यात्रा को जाते हैं। इनमें भी दो दल हैं। एक वे जिनके विवाह, शुभ संस्कार आदि इनके आचार्य करते हैं। दूसरे वे जो स्वयं ही सब विवाह आदि संस्कार कर लेते हैं। सराक तांती और रंगूनी तांती में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होते। बरहमपुर, गंज, कटक और पुरी जिलों में इनका अधिकतर निवास है। इनके गोत्र इस प्रकार हैं–काशीनाथ, जिनेश, साहू, दास, सेनापति, श्रीकृष्ण आदि।

ये लोग साहू, पुष्टि राउत, सनावली, बेहरा, सांधरा, नायक, पात्र और महापात्र संज्ञाधारी हैं। ये उडिया भाषा-भाषी हैं। बरहमपुर जिले में रंगिया सराकों की बहुत आबादी है। ये लोग धागा रंगते हैं और कपड़ा बुनने का काम करते हैं। यहाँ पहले घर-घर तीर्थंकरों की मान्यता थी, किन्तु जैन साधुओं विद्वानों और श्रीमन्तों से सम्पर्क छूट जाने के कारण ये जैन धर्म से दूर हट गए हैं और बौद्ध धर्म की शरण में आ रहे हैं। ये काशी, पुरी, मथुरा तथा खण्डगिरी उदयगिरी की तीर्थयात्रा करते हैं। ये जरायमपेशा नहीं हैं और विवादों का निपटारा आपस में मिलकर कर लेते हैं।

जैन पुराणों में कोटिशिला का वर्णन अनेक स्थलों पर आया है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता वी० सी० मजुमदार का इनके विषय में अभिमत है कि कलिंग और दक्षिण कौशल का मध्यवर्ती पार्वत्य प्रदेश ओड़ था। दक्षिण कोशल का निकटवर्ती पर्वत ही दशार्ण और पूर्वी दशार्ण पर्वत के निकट ही कोटिशिला अवस्थित थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोटिशिला के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। यह निर्वाण क्षेत्र है। निवाणकाण्ड के अनुसार यह कलिंग क्षेत्र में स्थित है और यहाँ यशोधर राजा के पाँच सौ पुत्र और एक करोड़ मुनि मोक्ष गये। "विविध तीर्थ कल्प" के कर्त्ता आचार्य जिनप्रम सूरि के अनुसार कोटिशिला अवस्थित है। पं० नाथूराम प्रेमी कोटिशिला को कलिंग में इस आधार पर मानते हैं कि सम्राट अशोक की कलिंग विजय के बाद मगध का अधिकार क्षेत्र गिना जाता था। ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने गंजाम जिले में स्थित मालती पर्वत की उस शिला को कोटिशिला माना है, जिसके बने एक दीपक में 250 सेर तेल आ सकता है। विभिन्न पक्षों पर विचार करने पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कोटिशिला कहाँ थी और अब उसकी पहचान क्या है।

वस्तुतः वर्तमान जैन समाज एक विशालतम वट-वृक्ष है और सराक उसकी वे जड़ें हैं, जिन पर यह वृक्ष पल्लवित होकर संविस्तृत हुआ है। यदि वर्तमान जैन समाज जिनेश्वर प्रतिमा है तो सराक उस नूतन प्रतिमा के अवशेष हैं। हर्ष की बात है कि आज उत्कल-कलिंग में गाँव-गाँव जिले-जिले में व्यापक रूप से सराकोद्धार कार्य चल रहे हैं और हमारे विस्मृत सराक बन्धु मूल जैन संस्कृति में लौट रहे हैं। साथ ही विषादपूर्वक यह भी ज्ञातव्य है कि इस कलिंग भूमि में एक लाख कलिंगवासियों को तलवार के घाट उतारकर हिंसक सम्राट अशोक मौर्य ने जैनधर्म का अस्तित्व मिटाने के स्वप्न भी संजोये थे।

बिहार में सराक संस्कृति

बिहार प्रदेश श्रमण संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। बिहार प्रदेश में चौबीस तीर्थंकरों में से बाईस तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया। छह तीर्थंकरों के जन्म ज्ञान और निर्वाण कल्याणक हुए। राजनैतिक दृष्टि से इस प्रदेश के राजपूत पाटलिपुत्र और चम्पा नगरी के शताब्दियों तक देश की राजनीति को प्रभावित किया। यह प्रदेश महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुषों की जन्मस्थली है।

प्राचीन काल में भारत के प्रायः सभी प्रदेशों की भाँति बिहार में जैन धर्मानुयायियों की बहुत बड़ी संख्या थी। बिहार में ही पार्श्वनाथ और महावीर का विशेषरूप से विहार हुआ था। अतः यहाँ की जनता पर उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व का और लोककल्याणकारी उपदेशों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

बिहार प्रदेश प्राचीन काल में मगध, अंग, वैशाली संघ आदि में बँटा हुआ था। ये ही राज्य प्रबल थे। महावीर के उत्तरकाल में मगध राज्य अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक प्रबल हो गया था। वैशाली और अंग के राज्यों पर मगध का आधिपत्य हो गया था। यह प्रदेश मगध कहा जाने लगा था। मनुस्मृति, महाभारत आदि हिन्दू ग्रन्थों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वकालीन इस प्रदेश का कोई नाम नहीं उपलब्ध होता बल्कि अंग और मगध ये नाम मिलते हैं। किन्तु शिशुनागवंशी अज्ञातशत्रु ने अंग, वैशाली आदि राज्यों को सत्ता के लिए समाप्त कर दिया। तब राज्य शक्ति की अपेक्षा से इस प्रदेश को मगध कहा जाने लगा। परन्तु यह नाम अधिक समय तक नहीं चल पाया। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी इस राज्य को छिन्न-भिन्न होने से नहीं बचा पाये। तब फिर मगध नाम छोड़ देना। वस्तुतः प्रदेश का नाम मगध कभी नहीं रहा। मगध में तो केवल पटना और गया जिले सम्मिलित रहें और उनकी राजधानी पहले राजगृह और बाद में पाटलिपुत्र रही है। इसलिए उन प्रदेश पर जब मगध का राज्य हो गया तो उसे मगध कहा जाने लगा।

आजकल जिसे बिहार प्रदेश कहा जाता है, उस समूचे प्रदेश का कोई एक नाम कभी नहीं रहा। वैदिक जैन और बौद्ध इन तीनों में से किसी के साहित्य में इस प्रदेश की कोई एक संज्ञा या नाम नहीं मिलता। महावीर अपने काल में सर्वाधिक प्रभावशाली पुरुष थे। उन्होंने इस प्रदेश में विहार करके जैनधर्म की ज्योति को जन-जन के मानस में प्रज्वलित कर दिया। तब यहाँ की जनता ने उनके नाम पर वर्धमान, वीरभूमि, मानभूमि आदि कई नगरों के नाम रख दिये तथा इस प्रदेश में महावीर का निरन्तर विहार हुआ था। अतः इस प्रदेश का नाम ही बिहार रख दिया।

महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले पार्श्वनाथ ने भी इस समूचे प्रदेश में विहार किया था। उनके आकर्षक व्यक्तित्व से लाखों लोग उनके धर्म की ओर आकृष्ट हुए थे और वे अनुयायी उनके इतने कट्टर श्रद्धालु बन गये जिसका आभास वर्तमान में सराक जाति के विश्वासों से मिलता है। यद्यपि यह सम्पूर्ण सराक जाति इस समय जैन नहीं है किन्तु वे अब भी पार्श्वनाथ को अपना कुलदेवता मानते हैं। पार्श्वनाथ का निर्वाण सम्मेद शिखर पर हुआ था। अतः जनता ने उनकी भक्ति से प्रेरित होकर उस पर्वत का नाम ही पारस पहाड़ रख दिया।

सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य के पतन की भी शुरुआत हो गयी और अन्ततोगत्वा 187 ईसा पूर्व के लगभग मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या उनके पुष्यमित्र शुंग नामक ब्राह्मण जाति के मौर्य सेनापति ने कर डाली और वंश की नींव डाली। मौर्य वंश का शासन 137 वर्ष चला और तत्पश्चात् अराजकता और अव्यवस्था फैल गयी। शुंग वंश के ब्राह्मण शासन की संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण धार्मिक शोषण और अत्याचार होने लगे और साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। तत्पश्चात् बौद्ध सत्ता और तदनन्तर मुस्लिम शासन की स्थापना हुई। इनके कमजोर प्रशासन के कारण शासन व्यवस्था शिथिल हो गयी। देश पर बाहरी ताकतों के आक्रमण होने लगे। शुंगवंश के शासन में दो अश्वमेध यज्ञ हुए। ये लोग बौद्ध और जैन विद्वेषक थे। अतः अनेक बौद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मठों और जैन विहारों का विध्वंस किया गया। अशोक की बौद्ध समर्थक नीतियों और उसके सभी उत्तराधिकारियों की जैनधर्म समर्थक नीतियों के कारण घोर संघर्षों और राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति पैदा हो गयी। ब्राह्मणों का विद्रोह हुआ, जिसके कारण घोर अस्थिरता की स्थिति पैदा हुई। देश पर यवन (बैक्ट्रिमन) मिनाण्डर के आक्रमण हुए। छत्रप भूमक शकों के हमले हुए। सीमा पर गुप्त वंश हावी हो गया। यूनानी, पार्थियन, शक, हूण, कुषाण, पल्हव आदि विदेशी शक्तियाँ आक्रमण कर रही थी। उसी समय सन् 30 ईसा पूर्व में सातवाहन (ब्राह्मण) वंश का उदय और तदुपरान्त पराजय हुई। इस समय तक पेदि शासको की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। धार्मिक सहिष्णुता का अन्त हो चुका था तथा हिन्दू धर्म पुनः हावी हो रहा था और पूर्व भारत में सर्वत्र अन्धकार युग छा गया था। ऐसी स्थिति में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जैन धर्मियों पर घोर अत्याचार हुए। लाखों सराकों को मौत के घाट उतार दिया गया और उनके विहार, देवालय और मन्दिर नष्ट कर दिये गये। लाखों जैन श्रावकों को सामूहिक संहार से बचने के लिए धर्म परिवर्तन करने पड़े या भाग कर ग्रामों में खेती-बाड़ी करनी पड़ी या प्रायः रक्षा के लिए घनघोर जंगलों में छिपना पड़ा।

बौद्ध यात्री फाह्यान 399 ईसा पूर्व में भारत आया था। तथा हेनसांग बाद में 630 ईसवीं में भारत आया था। उनकी यात्राओं के समय के विवरण प्राप्त होते हैं उनसे उस काल में जैन समाज, उनके धर्मायतनों आदि की तत्कालीन स्थिति का आभास मिलता है। उनके विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ और महावीर का अपने-अपने काल में जनता पर कितना प्रभाव रहा है तथा सराक जाति की क्या स्थिति थी। पार्श्वनाथ को उनके अनुयायी अपना कुल देवता मानते हैं और महावीर के विहारों की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए जनता ने उस प्रदेश का नाम ही विहार प्रदेश रख दिया।

बिहार प्रदेश में पार्श्वनाथ के अनुयायी सराकों की संख्या बहुत अधिक है और अधिकांशतः ये लोग सिंहभूमि धनबाद और राँची जिलों में हैं। इनमें मूलतः सराक, सिवरिया सराक, काडसी सराक आदि हैं। इस प्रान्त के सराकों के गोत्र इस प्रकार हैं—आदिदेव, धर्मदेव, गौतम, शाण्डिल्य, वत्सराज, आचार्य, आचार्य पराशर आदि।

सराक जाति में जैन धर्म के प्रचार का आरम्भ सिंहभूमि, धनबाद और राँची जिलों से हुआ था। इस क्षेत्र में सराकों के साथ जैनों का सम्पर्क भी अब विच्छिन्न चल रहा है। इसलिए इस क्षेत्र के सराक बन्धुओं में जैन धर्म के प्रति रुचि बढ़ती जा रही थी। सराक बन्धुओं के कई ग्रामों में दिगम्बर जैन मन्दिरों का भी निर्माण हो चुका है। इसलिए वे दिगम्बर आम्नाय के अनुसार पूजन, णमोकार मंत्र का जाप, रथयात्रा आदि करते हैं। ये सराक बन्धु अपने नाम के अन्त में जैन, श्रावक भी लगाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक जाति : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजमल जैन
बी-1/324, जनकपुरी, नई दिल्ली

केरल में जैनधर्म सम्बन्धी अनुसंधान करते समय प्रस्तुत लेखक को उस प्रदेश की जातियों और आदिमजातियों का अध्ययन करने का भी अवसर प्राप्त हुआ था। उनमें से कुछ में ऐसे संकेत मिले कि वे किसी समय जैन रहे हैं या जैनधर्म से सम्बन्धित प्रदेश से वहां आकर बसे हैं। वहां एक जाति ऐसी भी है जो अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह कथन करती है कि एक समय बनारस में अकाल पड़ा था. तब वे लोग केरल में आकर बसे थे। ऐसा लगता है कि चंद्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में मगध में जो दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय चंद्रगुप्त-भद्रबाहू के नेतृत्व में बारह हजार मुनियों का जो संघ दक्षिण भारत में आया था उसके साथ विशाल श्रावक-संघ भी आया होगा। सम्भवतः उसका एक भाग केरल में ही रह गया। ऐतिहासिक अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सराक जाति भी अन्यत्र से आकर झारखंड या छोटा नागपुर क्षेत्र में आ बसी है। इस प्रश्न पर मानववंश वैज्ञानिको तथा पुरातत्वविदों के मतों के प्रकाश में विचार करना उचित होगा।

सराक जाति इस तथ्य से भी पहिचानी जा सकी है कि वह पूरी तरह शाकाहारी है। उसमें प्रचलित एक कहावत के अनुसार वह पंच उदुंबर फल नहीं खाती है। उड़ीसा के तांती सराक तो आलू, गोभी और प्याज आदि भी नहीं खाते हैं। यही नहीं, झारखंड क्षेत्र में वसने वाली कुछ आदिम जातियों जैसे संथाल, उरांव, भील, गोंड आदि के भगत (निरामिष या शाकाहारी साधु, उपासक, सेवक, ओझा) भी शाकाहार अपनाते हैं। इन जातियों और दो-तीन अन्य आदिवासी जातियों में शाकाहार का श्रेय सन् 1991 की जनगणना के परिणामों के आधार पर प्रकाशित People of India, Vol. vii, The Scheduled Tribes, 1994 में जैनधर्म को तथा वैष्णव धर्म को दिया गया है। उसमें कहा गया है कि, "It is interesting to observe that all the three communities (Rabari, Bharward and Toda) are pastoral. This adds a new dimension to the study of vegetarianism in India both in its historical and in its regional variations. Vegetarianism in India has so far been associated with Jainsim and Vaishnavism...... There are also vegetarian bhagats who have been

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका जैन परिवेश भी इस विरोध को सफल बनाने में सहायक हुआ। कई छोटे-छोटे समूहों में सराक लोग सुदूर और अगम्य भागों में बस गए जिससे उन्हें लम्बे समय तक छेड़ा नहीं जा सका और सराक समुदाय अपनी प्रजातीय शुद्धता और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को बचाए रख सके।

सराक प्रजाति कला और उसकी शैली की रूपरेखा का परिचय प्राप्त करने के लिए उसके प्रमुख लोक तत्व, प्रमुख प्रतीकों का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है। इस दृष्टि से सराक लोकचित्रकला में जो प्रमुख प्रतीक प्राप्त होते हैं उनमें तीर्थंकरों की माता के सोलह शुभ स्वप्न, अष्ट मांगलिक शुभचिन्ह, तीर्थंकर के आसन के रूप में सिद्धशिला, समवशरण की रचना आदि हैं। सराक लोकचित्रकला में अलंकरणों का प्रयोग अपनी विशेषता लिए है। इनके अतिरिक्त स्वास्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त्त, वर्धमानक्य, भद्रासन दर्पण आदि चित्र मिलते हैं। सराक चित्रकला में पार्श्वनाथ और महावीर के चित्र अधिकाँश मिलते हैं। नारी चित्रित करने के लिए तीर्थंकरों के दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी तथा तीर्थंकरों की अधिष्ठात्री देवियों—अम्बिका, पद्मावती, सरस्वती, शासन चक्रेश्वरी और सोलह विद्या देवियों के चित्र अंकित किए जाते हैं। विविध अनुष्ठानों, विधानों में जैन प्रतीक चिन्ह बनाए जाते हैं। यही प्रतीक चिन्ह आज भी बनाए जाते हैं।

रंगयोजना की दृष्टि से सराक लोककला-कृतियों का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक काल में इनमें हल्दियास रंगों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था, बाद में लाल रंगों का प्रयोग अधिक होने लगा। इसके अतिरिक्त आसमानी, पीला, नीला, श्वेत रंगों का भी समावेश किया गया है। सुनहरी स्याही का प्रयोग भी इनमें अधिक होने लगा था।

सराक चित्रकला में पौराणिक वनस्पति रंगों का स्थान अब आधुनिक रंगों ने ले लिया है। स्वर्ण रंग जैन चित्रों की विशिष्टता रही है जो आज भी पहले की तरह दिखाई देती है।

सराक लोकचित्रकला में वस्त्र, आभूषण, मुकुट और मालाओं की सज्जा पर अधिक ध्यान दिया जाता है। नारी शृंगार में माथे पर बिंदी, कानों में कुण्डल, बाँहों में बाजूबन्द आदि का अंकन किया जाता है। गले में रत्न मालाओं को प्रधानता दी जाती है जो सभी चित्रों की विशेषता है। वस्त्रों में धोती की सज्जा मोहक, सुघड़ है। प्रारम्भिक चित्रों में श्वेत तथा स्वर्णिम रंग की प्रधानता वस्त्रों में अधिक थी जिसका स्थान बाद में ईरानी प्रभाव के कारण बेलबूटों की पच्चीकारी ने ले लिया। बाद के चित्रों में मुकुट के स्थान पर पगड़ियों का अंकन होने लगा। जहाँ पुरुषों के वस्त्रों में धोती व दुपट्टे प्रमुख हैं वहाँ नारीचित्रों में कंचुकी, रंगीन धोती, चुनरी और कटिपट का प्रयोग मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार सराक चित्रकला की परम्परा के अन्तर्गत जो कार्य हुआ है उसने भारतीय चित्रकला का विकास मार्ग प्रशस्त किया है। चित्रकला की लोकपद्धति की शैलियों में जैन सराक चित्रकला प्रमुख रही है। देश में जैन चित्रकला के माध्यम से यह परम्परा अनवरत चलती रही। भारतीय चित्रशैलियों में बेलबूटों की जन्मदात्री सर्वप्रथम जैन चित्रकला ही रही है। जैन चित्रकला ने अपनी परम्परागत धार्मिक निष्ठा को स्थिर बनाए रखा। लोककला के उन्नत स्वरूप के रूप में इस काल में अल्पना चित्रों का अंकन किया जाता रहा है। साथ ही मिट्टी, पत्थर व हाथीदाँत पर भी चित्र उकेरे जाते थे।

सराक क्षेत्र के भित्तिचित्रों में खनिज रंगों का उपयोग मिलता है। इनमें कुछ मूल रंग होते हैं जिनमें केवड़ी (हल्का हरा) हिरमिजी (हरा) सिमरिक (लाल) नील (नीला) प्योड़ी (भाऊ अंवर) काजल आदि हैं। रंगों के खनिज पत्थरों को घिसकर उनमें किरेटिन या गोंद मिलाकर तैयार किया जाता है ये रंग अधिक समय तक स्थायी बने रहते हैं। काला रंग बुझा हुआ चूना, गोंद का काजल मिलाकर तैयार किया जाता है। काली स्याही के रूप में इसी काले रंग का उपयोग होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक लोककला की सांस्कृतिक धरोहर

माधुरी जैन

संस्कृति किसी क्षेत्र-प्रदेश-विशेष की सीमा में सीमित नहीं होती। निरंतर प्रगतिशील मानव-जीवन-प्रकृति और मानव-समाज के जिन-जिन असंख्य प्रभावों और संस्कारों से प्रेरित, प्रभावित और संस्कृत होता रहता है। उन सबके सामूहिक स्वरूप को ही हम आज संस्कृति की संज्ञा से संबोधित करते हैं। यही विरासत सराक संस्कृति पर लागू होती है। सराक जाति जैन संस्कृति की पक्षधर है। ये प्रभाव और संस्कार किसी एक निश्चित क्षेत्र के नहीं होते। आज सराक संस्कृति के चिन्ह प्रतीकादि वहाँ के लोक व्यवहार और साहित्य और लोक परम्परा में दृष्टिगत होते हैं। यह सराक संस्कृति की संवेदनशीलता, सुसंस्कार और उसकी अर्जित अस्मिता का जीता-जागता प्रमाण है। परम्पराएँ अनवरत चलती रहती हैं, भले ही इनका स्वरूप बदल गया हो। यही कारण है, सराक संस्कृति और लोकजीवन तत्कालीन समाज की झांकी आज भी बिहार, उड़ीसा, बंगाल के अंचलों में देखने को मिल जाती है। आर्थिक रूप से सराक समाज के गाँव काफी पिछड़े हैं फिर भी मूल योजना में माँडने की कला एवं भित्तिचित्रों में भाव व्यंजना के अनोखे एवं अद्‌भुत सौन्दर्यशाली उदाहरण मिलते हैं। लोककला शैली में जो सराक महिलाएँ चित्र बनाती हैं उनमें कुछ कथात्मक दृश्य चित्रपटल पर विविध आकृतियाँ यद्यपि दूसरे से स्वतन्त्र रूप से चित्रित होती हैं परन्तु भाव-भंगिमा द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं। भगवान महावीर को अभिषेक के लिए ले जाती महिलाएँ हाथियों पर शोभायमान हैं। जन्माभिषेक कर देवों द्वारा रत्नों की वर्षा, त्रिशला में के सोलह सपने शोभायात्रा की सुविस्तीर्ण रचना में एकात्मक भाव के अविकल आयोजन की अद्‌भुत छटा है। बिहार, उड़ीसा, बंगाल की प्रचीन सामाजिक व्यवस्था में सराक स्त्रियाँ ही हमारी समृद्ध लोककला की धरोहर की संरक्षित करके रख पायी है।

आपका प्रश्न होगा कि सराक, आर्यो के आगमन से त्रस्त हुए और संस्कृति को ध्वस्त किया गया तब कुछ समूह अपनी आदिम संस्कृति को कैसे बचाये रख सके ? कई समूह सफलतापूर्वक सामाजिक संविलियन का विरोध करते रहे। इस विरोध की कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी। अपनी सांस्कृतिक विरासत और अस्मिता को बचाये रखने के लिए उन्हें नवविकसित सांस्कृतिक केन्द्रों से दूर वनों और पर्वतों की शरण लेनी पड़ी। इस एकान्त में सराक प्रजाति ने अपनी जीवनशैली की विशिष्टता को बचाये रखा। धीरे-धीरे उन पर सांस्कृतिक और धार्मिक दबाव बढ़ते गये। उनमें से कुछ हिन्दू बन गये कुछ हठधर्मी थे वे इस प्रक्रिया का अंगन बनने में सफल हुए। संख्या के अतिरिक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

influenced by Vaishnavism among the Santhals, Bhils, Uraons, Gonds, Karwar, etc." खेद की बात है कि बिहार की संथाल जातियों के भगतों में शाकाहार का श्रेय केवल वैष्णव धर्म को ही दिया गया है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि संथाल आदि जातियां प्राचीन काल से ही सराक जाति के साथ रह रही हैं। उनमें परस्पर प्रभाव की संभावना करना अनुचित नहीं होगा। इन जातियों के भगतों में शाकाहार सराक जाति के साथ सतत साहचर्य का परिणाम संभव है। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक धारा का प्रबल प्रभाव तो ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में इस क्षेत्र में हुआ। जैनधर्म तो इस क्षेत्र में पहले से ही प्रभावी था। इस कारण वैष्णव धर्म की अपेक्षा जैनधर्म को इसका श्रेय देना शायद उचित होगा।

बिहार की मुंडा जाति आर्य जाति से भिन्न है और वह सबसे प्राचीन जाति मानी जाती है। किन्तु वह भी छोटा नागपुर क्षेत्र की मूल जाति नहीं है। उसका मूल स्थान मगध बताया जाता है। आर्यों के दबाव के कारण उसे मगध को छोड़कर दक्षिण दिशा के निचले भाग छोटा नागपुर क्षेत्र की ओर पलायन करना पड़ा।[1] मुंडा जाति ने हजारीबाग की ओर से रांची क्षेत्र में प्रवेश किया। किसी समय हजारीबाग जिला घने जंगलों तथा अगम्य पहाड़ियों से युक्त था। उसने अनेक आर्येतर जातियों को विभिन्न समयावधियों में आश्रय दिया था। जो भी हो, रांची क्षेत्र को सबसे पहले आबाद किया मुंडा जाति ने। उसके बाद मांझी सराकों (Manjhi Saraks) ने इस भूभाग को अपना निवास स्थान बनाया।

प्राचीन काल में रांची क्षेत्र में नागवंशी राजाओं का शासन रहा। उनका शासनकाल महाभारत युद्ध के बाद से पार्श्वनाथ के युग तक अनुमानित है। इन राजाओं के किले के भग्नावशेष इस समय भी रांची के निकट देखे जा सकते हैं।[2] तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी नागवंश में जन्मे थे। हजारीबाग-रांची क्षेत्र में सराक जाति के कुलदेवता पार्श्वनाथ का प्रभाव स्पष्ट है। अतः मुंडा जाति पर सराक जाति का व्यवहारगत प्रभाव अनुमानित करना अनुचित नहीं होगा।

ऐसी भी अनुश्रुति है कि धार्मिक अत्याचारों (11वीं-12वीं सदी) के कारण राजस्थान के श्रावक इस क्षेत्र में आए थे। उन्होंने आकर वहां खेती प्रारम्भ की।[3] कालान्तर में वे ही सराक कहलाने लगे। इस अनुश्रुति में काल-गणना सम्बन्धी कुछ भूल जान पड़ती है क्योंकि सराक जाति का आगमन तो मुंडा जाति के बाद ही हो चुका था। हो सकता है ये लोग श्रावकों की दूसरी टोली के हों।

मुंडारी भाषा के शब्दकोश में "सराक" शब्द पाया जाता है। Mundari-English Dictionary में Sarak शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है-Sarak

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the Manjhi Caste; a corrupt form of the Jain word 'Sravak'. इस कोश का संकलन अंग्रेजी शासन-काल में क्षेत्रीय अध्ययन के बाद किया गया था और उसके सूचनादाता स्वयं मुंडा जाति के लोग रहे होंगे। यह माना जा सकता है कि काफी प्रचलन के बाद ही सराक शब्द को मुंडा शब्दसंपदा में स्थान मिला होगा। इस प्रविष्टि से यह तथ्य भी उभरता है कि मुंडा और सराक जाति के सम्बन्ध प्राचीन काल से है और यह कि सराक जाति प्राचीन है।

संथाल जाति एक प्राचीन आदिम जाति है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकती रही है और अपनी उत्पत्ति के अनेक स्थान बताती है। कुछ विद्वान यह मत प्रतिपादित करते हैं कि वे सिंधु घाटी सभ्यता क्षेत्र से पलायन कर इधर आए हैं। उनकी भ्रमणशीलता की करुण कहानी उनकी एक सुंदर कन्या और संथाली लड़कियों का मोहक नृत्य बताया जाता है। संथाल जन जब अपने स्थान को छोड़कर छोटा नागपुर क्षेत्र में आए, तब Maran Buru अर्थात् the Great Mountain ने उनके और उनका पीछा करने वालों के मार्ग में व्यवधान खड़ा करके उनकी बड़ी सहायता की थी। वे उस महान पर्वत की पूजा करते हैं। उसका नाम है Sikhar जिसकी पहिचान हजारीबाग जिले में की गई है।[4] संभव है, यह महान पर्वत शिखरजी हो और वे शिखरजी को अपना नाम देने वाले तीर्थंकर को तो भूल गए और दूर से ही शिखरजी की पूजा करने लगे। सराक जाति के साथ वे शांतिपूर्वक रहते आए हैं और सम्भव है कि सराक जाति में शाकाहार का प्रभाव उनके भगतों पर भी पड़ा हो। वैसे सराक जाति से उनके संघर्ष की कोई अनुश्रुति भी संभवतः नहीं है।

छोटा नागपुर क्षेत्र की एक प्राचीन जाति भूमिज भी है। इस जाति के लोगों और सराक जाति में घनिष्ठ एवं सौहार्दपूर्ण जातीय सम्बन्ध बताए जाते हैं। मुंडा जाति के लोगों से भी भूमिजों के घनिष्ट सम्बन्ध बताए जाते हैं। उनकी पहिचान जैन पौराणिक इतिहास की वज्रभूमि से की गई है। ये प्राचीन जैन "Ancient Jains" हैं जिन्होंने मानभूम जिले के पुरुलिया आदि क्षेत्रों में भग्न जैन मंदिरों आदि के रूप में अपने चिन्ह छोड़े हैं।[5] भूमिजों का निवासस्थान मुख्यतः बंगाल है।

बंगाल-बिहार-उड़ीसा की 1913 की जनगणना रिपोर्ट में कहा गया है कि पोड्र लोगों का एक वर्ग इस बात पर विशेष जोर देता था कि उसकी गणना उन पोड्रों से अलग की जाए जो मछली पकड़ते हैं। इन लोगों ने अपने आपको व्रात्य क्षत्रिय बताया और अपना व्यवसाय खेती लिखवाया।[6] पोड्र सम्भवतः पोंड्र का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है कि पुंड्र देश का निवासी। पुंड्र भूभाग की पहिचान आजकल के बंगाल के मालदा जिले से की जाती है। इस जिले में भी सराक जाति का निवास पाया गया है और उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंदिरों के भग्नावशेष आदि भी पाए गए हैं। सम्भव है सराक जाति का एक वर्ग अपने आपको पोड्र कहलाने में गर्व का अनुभव करता हो। जीवदया की भावना के कारण ये सराकों के समकक्ष माने जा सकते हैं। यह भी सम्भव है कि ये व्रात्य क्षत्रिय अथर्ववेद के व्रात्य कांड में उल्लिखित व्रात्य हों। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि व्रात्य कांड का सम्बन्ध जैनधर्म से है। यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि जैन साहित्य पुंड्र देश की कथाओं से भरा पड़ा है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने भारतीय इतिहास एक दृष्टि में लिखा है कि व्रात्य क्षत्रिय पार्श्वनाथ के उपासक थे।

बंगाल के मानभूम जिले में सराकों की अच्छी खासी आबादी रही है। इसी जिले में ब्राह्मणों का एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने को महावीर का वंशज कहलाता है। ये लोग अपने को "पच्छिम ब्राह्मण" कहते हैं।[7] सराक जाति से महावीर के इन वंशजों का सम्बन्ध कल्पित करना अनुचित नहीं होगा।

प्रसंगवश यह उल्लेख किया जाता है कि बंगाल के बांकुड़ा जिले के गजेटियर में यह महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है कि पूरे पश्चिम बंगाल में जैनधर्म किसी समय छा गया था। उद्धरण इस प्रकार है-"The opinion of an authority of the eminence of Ramkrishna Gopal Bhandarkar that Prachyadesha (literally the eastern country) which comprised practically the whole of Bengal was Aryanised by Jainism is now universally accepted by scholars."[8]

बीरभूम जिले के गजेटियर की यह सूचना भी प्रस्तुत विषय पर डालती है- "There is a pargana in Birbhum district spread out in the thanas of Suri, Pubrajpur, Ilambazar and Bolpur called Jain-Ujhial."[9] जैन उज्झल से आशय उजाड़ बस्ती से जान पड़ता है। उसका सम्बन्ध सराक जाति से अनुमानित किया जा सकता है क्योंकि वह बंगाल में प्रमुख रही है।

यदि इन उपर्युक्त जिलों में अनुसंधान किया जाए तो सराकों के ओर भी अनेक स्थानों की जानकारी प्राप्त होने की संभावना है। उन स्थानों में सराक भिन्न नामों से भी जाने जा सकते हैं।

ओड्र देश या उड़ीसा में भी सराकों की अवस्थिति है। पुरी के गजेटियर में 1890-1900 की सर्वे रिपोर्ट के आधार पर कहा गया है कि "The Saraks are an archaic community." और उन्होंने जुलाहे का व्यवसाय अपना लिया है और वे सराकी तांती कहलाते हैं।[10] वे प्राचीन हैं यह स्पष्ट है। पुरी के सराक पार्श्वनाथ की स्तुति में जो भजन गाते हैं, उसका उल्लेख आगे किया जाएगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक शब्द की व्युत्पत्ति एवं प्रचलन से सराक जाति की प्राचीनता किस प्रकार ध्वनित होती है इस पर विचार करना उचित होगा। प्रायः सभी लेखकों ने स्वीकार किया है कि सराक शब्द की व्युत्पत्ति श्रावक शब्द से हुई है। किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण इस व्युत्पत्ति का समर्थन नहीं करते। उनके अनुसार श्रावक शब्द से "सावग" शब्द बनना चाहिए। सावग शब्द में श्रावक के श्र में संयुक्त रेफ का लोप, श को दन्त्य स और क के स्थान पर ग हो गया है। विकल्प से क भी होता है। उससे सावक शब्द बनेगा किन्तु प्रचलित शब्द तो सराक है। सराक शब्द अर्धमागधी और प्राकृत के कोषों में भी गृहीत नहीं हुआ है।

अर्धमागधी कोष में श्रावक के दो रूप दिए गए हैं-सावग और सावक। श्राविका के लिए इस कोष में साविगा रूप ग्रहण किया गया है।

पाइअ-सद्द-महण्णव (प्राकृत शब्द महार्णव) में केवल सावग रूप ही दिया गया है जबकि श्राविका के दो रूप-साविआ और साविगा दिए गए हैं।

उपर्युक्त दोनों कोष प्राचीन जैन साहित्य के विलोडन पर आधारित हैं। उनमें सराक शब्द का अभाव यह सूचित करता है कि सराक या तो मुख्य जैन धारा से कट गए थे या वे इन कोषों के उपजीव्य साहित्य से भी प्राचीन हैं।

जैनधर्म का प्राचीन नाम महावीर स्वामी के समय में निर्ग्रंथ धर्म या आर्हत् धर्म था। उसको मानने वाले श्रावक कहलाते थे। पार्श्वनाथ के समय में भी श्रावक शब्द प्रचलित रहा होगा। महावीर ने जैन संघ को मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इन चार वर्गों में बांटा था। उन्होंने पार्श्वनाथ की परंपरा को ही आगे बढ़ाया था ऐसी जैन मान्यता है। इसलिए यह संभावना की जा सकती है कि श्रावक शब्द पार्श्वनाथ के समय में भी प्रचलित रहा होगा। सराक पार्श्वनाथ को अपना कुलदेवता मानते हैं। महावीर संभवतः उनकी स्मृति में नहीं हैं। इससे ऐसा ध्वनित होता है कि सराक जाति पार्श्वनाथ के समय से अस्तित्व में है अन्यथा यह अर्धमागधी और प्राकृत साहित्य की पकड़ में आ सकती थी।

तीर्थंकरों के अनुयायियों के लिए "जैन" शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। ऐसी धारणा है कि इस शब्द का प्रयोग ईसा की दूसरी सदी में हुए आचार्य समंतभद्र ने सबसे पहले किया था। सराक जाति इस शब्द का प्रयोग न करके अपने को श्रावक ही कहती है। इससे भी यह अनुमान होता है कि सराक जाति प्राचीन है।

जैनों को उनका पुराना नाम श्रावक की याद दिलाने की दृष्टि से ही संभवतः 1994 में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ने "The Listeners-A Study of Jains" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें आचार्य शांतिसागरजी तक की चर्चा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक जाति के व्यवसायों की प्राचीनता से भी यह परिणाम सामने आता है कि यह जाति बहुत प्राचीन काल से अस्तित्व में है।

कहा जाता है कि सराक जाति ने छोटा नागपुर क्षेत्र में गन्ना-संस्कृति (Sugar Civilisation) का प्रारम्भ किया।[11]

सिंहभूमि, मानभूम जिलों के गजेटियरों में यह उल्लेख है कि सराकों ने कृषि-कार्यों के लिए बड़े-बड़े तालाबों का निर्माण किया था। यह अनुश्रुति अब तक प्रचलित बताई जाती है।

सराक जाति के लोग लोहे की खदानों से लोहा निकालने और उससे बनी वस्तुओं का व्यापार करने में सिद्धहस्त थे। उन्हें यह ज्ञात था कि कच्चा लोहा कहां पाया जाता है। उन्हें इस विषय की जानकारी पीढ़ियों से प्राप्त थी। आधुनिक जमशेदपुर के आसपास बहुत-से गांव थे और घना जंगल था। गांवों में लोहारों की बड़ी आबादी थी। श्री पी०सी० राय चौधरी ने सिंहभूम गजेटियर 1958 में लिखा है कि "The ancient Saraks (a class of Jains) had been the earliest known smelters of copper and iron-ore.

मानभूम जिले में 1868 में Prof. Ball को अनेक प्राचीन खदानें पहाड़ियों के शिखरों, घने जंगलों तथा खेतों के बीच में भी देखने को मिलीं जिनसे तांबा निकाला जाता था। उनके सम्बन्ध में उल्लेख है कि "These excavations show that ancient miners had carefully searched the country and had considerable mining skill, while the slugs furnish conclusive evidence of their proficiency as practical metallurgists. The mines found were attributed to a people called Saraks, who once held the country." इस जानकारी में आगे कहा गया है कि जो सराक मानभूम में रह गए, वे जंगलों के अंदरूनी भागों की ओर बढ़ गए और उन्हें इसका लाभ तांबे की खदानों के रूप में प्राप्त हुआ। ("the Saraks or the lay-Jains penetrated the jungles, where they were rewarded with the discovery of copper.")[12] किन्तु इन खदानों से भी सराकों को हाथ धोना पड़ा। रिसले का मत है कि अपने मंदिरों, मूर्तियों के साथ ही साथ सराकों को तांबे की खदानों को छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा।

छोटा नागपुर क्षेत्र में सामान्य कृषि, गन्ने की खेती, कच्चे लोहे और तांबे की खदानों का दोहन करने वाले सराकों को पाश्चात्य पुरातत्वविदों ने सभ्य जाति (Civilised race) कहा है। वास्तव में, वे एक समुन्नत जाति के खंडहर है। किंतु एक समय ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी आया कि उन्हें खेती, कपड़ा बुनना जैसे व्यवसायों को अपनाना पड़ा। वर्तमान में उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय बताई जाती है।

अब जैन पौराणिक इतिहास एवं संबद्ध सामग्री पर एक दृष्टि प्रस्तुत है।

आज (1996) से 2872 वर्ष पूर्व जन्मे तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने 70 वर्षों तक दूर-दूर के प्रदेशों में विहार कर अहिंसा और सत्य का प्रचार किया था। इन प्रदेशों में पुंड्र देश से लेकर ओड्र देश तक का वह भूभाग भी शामिल है जिसमें सराक जाति विशेष रूप से बसी हुई है। पुंड्र देश में उनके विहार के सम्बन्ध में श्री विनयकुमार सरकार ने अपनी पुस्तक Folk Elements in Hindu Culture में इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है-"The Jain festivities were first adopted and celebrated by the Pundras immediately after the visit of Parshwanatha to their country, and have ever since been duly observed.....there are ample evidences to show that Jainism was once firmly established over the whole of Bengal. Even now relics of this creed are to be met with in the disctrict of Bogra (in North Bengal)"[14] जैन परम्परा में पुंड्र देश की काफी चर्चा पाई जाती है।

बंगाल के बांकुड़ा जिले के गजेटियर 1968 से यह सूचना प्राप्त हुई है कि उस जिले में जैनधर्म से सम्बन्धित अनेक अवशेष जैसे ईंटों से निर्मित स्तूप, मंदिर आदि का पता चला है। वहां पार्श्वनाथ की मूर्तियां अधिक मिली हैं। कुमारी नदी के किनारे Paresnath नामक एक प्राचीन स्थल है जहां पार्श्वनाथ की मूर्ति मिली है। गजेटियर ने इस स्थान को "pre-historic" बताया है। इस जिले के कोटुलपुर गांव में एक शांतिनाथ शिव मन्दिर है जो कि कौतुहल का विषय है।

उड़ीसा या कलिंग देश के सराकों ने "तांती" यानी कपड़ा बुनने का व्यवसाय अपना लिया है और अपना धर्म भी बदल लिया है। फिर भी वे पार्श्वनाथ को नहीं भूले हैं। वे वर्ष में एक बार जैन तीर्थस्थान खंडगिरि जाते हैं और वहां वे धार्मिक चर्चा करने के अतिरिक्त पार्श्वनाथ की स्तुति में जो भजन गाते हैं, वह इस प्रकार है-"तुमि देखि जिनेन्द्र देखिल पातिक पोलाय, प्रफुल्ल हल काय, सिंहासन दत्र आछे, चामर आछे कोटा। दिव्य देह के मन आछे किंवा शोभाय कोटा।। तुमि।। क्रोध मान माया लोभ मध्ये किछु नाही। राग द्वेष मोह नाहि एमन गोसांई।। तुमि।। के मन शान्त मूर्ति बटे, चले सकल भाषा, केवली रिमुद्रा एखन साक्षात् देखाय।। तुमि।। ओर देवर सेवा हते संसार बाढ़ाय, पार्श्वनाथ दरश हते मुक्ति पद पाय।। तुमि।। कहा केउ ना डाके प्रभु वाटन (रत्न) देवय (देव) मुनीश करे कथा किंवा इन्द्र करे कत सेवा।। तुमि।। हासि प्रभु देखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाये, भाग्य करे कति, उग्र पुन्य हाते सेवक दर्शन पाति।। तुमि।।[15] यह स्तुति ही इस बात का प्रमाण है कि सराक पार्श्व परंपरा के हैं और वे प्राचीन हैं।

बिहार राज्य में तो पार्श्वनाथ के प्रभाव एवं उपदेश का साक्षी पारसनाथ हिल या सम्मेदशिखर है ही जहां उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। उससे लगे जिलों में या दक्षिण बिहार में उनके अनुयायी सराक पाए जाऐ तो, उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है ही कि सराक जाति कम से कम पार्श्वनाथ के समय से अस्तित्व में है। इसके समर्थन में सराक क्षेत्र या बंगाल-उड़ीसा में पार्श्वनाथ की मूर्तियों का सबसे अधिक पाया जाना भी प्रबल पार्श्व परंपरा की सूचना है।

जैन मान्यता है कि महावीर ने पार्श्वनाथ की परंपरा को आगे बढ़ाया या वे भी उसी परंपरा के थे। उन्होंने सराक क्षेत्रों में विहार किया था अथवा नहीं इसका वर्णन दिगम्बर परंपरा के ग्रंथों में विस्तार से उपलब्ध नहीं है। श्वेतांबर आम्नाय के आचारांग, आचारांगचूर्णि[16] आदि ग्रंथों से यह संकेत मिलता है कि महावीर का विहार आदिवासी क्षेत्रों में भी हुआ था। उनके अनुसार महावीर का विहार राजगृह से लाढ़ देश या राढ़ देश की ओर हुआ। वहाँ से वे वज्जभूमि या वज्रभूमि और सुम्हभूमि या शुद्धभूमि जैसे आदिवासी क्षेत्रों में उन पर उपसर्ग किए गए। लोग उन पर कुत्ते छोड़ देते थे।[17] किंतु सहनशीलता के हिमालय महावीर विचलित नहीं हुए। उनकी कष्टसहिष्णुता रंग लाई। उनको कष्ट देने वाले उनके परम भक्त बन गए। कर्नल डाल्टन ने यह लिखा है कि महावीर जिस मार्ग से या जिस क्षेत्र में गए थे, वहां के लोगों ने उनके सम्मान में अनेक मंदिरों एवं महावीर तथा पार्श्वनाथ की अनेक मूर्तियों का निर्माण करवाया। यही कारण है कि सराक क्षेत्र में पार्श्व के साथ ही साथ महावीर की भी मूर्तियां सराक क्षेत्रों में पाई गई हैं। उन्होंने अपने एक क्षेत्र का नाम ही वर्धमान रख दिया। इस नाम के सम्बन्ध में ब्र. शीतलप्रसादजी ने प्रसिद्ध हिंदी विश्वकोश के संपादक श्री नगेन्द्रनाथ बसु के एक लेख का सारांश दिया है। उसका संबद्ध उद्धरण प्रस्तुत है-"प्राचीन काल में वर्धमान तथा उसके आसपास के जिले को राढ़ भूमि कहते थे.... श्री महावीर के समय मे एक अनुमान में सन् ई० से 500 वर्ष पहले सूक्ष्म अथवा राढ़ देश को वर्धमान के नाम से जाना जाता था क्योंकि 24 वें तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी ने इस देश में विहार किया इसलिए जैन समाज ने इसको पुण्य क्षेत्र माना और बहुत संभव है कि श्री वर्धमान स्वामी के पुण्य समागम से इस स्थान का नाम वर्धमान प्रसिद्ध हुआ।[20]

सन् 1910 में बर्दवान का जो गजेटियर छपा था उसमें इस जिले के नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है, "The name Bardhamana in the vernacular is a corruption of the Sanskrit Vardhamana

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(the present participle passive of the verb Vardh) and implies"the increasing and prosperous."[21] गजेटियर के संपादक श्री पीटरसन को किसी संस्कृत पंडित ने भ्रमित कर दिया ऐसा लगता है। इस तरह की व्युत्पत्ति के अनुसार तो दिल्ली का नाम वर्धमान रख देना चाहिए।

अब इस बात पर विचार करना उचित होगा कि सराक जाति को अपना मूल स्थान छोड़कर छोटा नागपुर या झारखंड क्षेत्र में क्यों बसना पड़ा तथा वे कौन-सी परिस्थितियां थीं जिनके कारण सराकों को अपना धर्म बदलना पड़ा और अपने संस्कारों को बनाए रखना पड़ा ?

उपर्युक्त प्रश्न के समाधान के लिए यह जान लेना उचित होगा कि झारखंड के विचारकों आदि के इस सम्बन्ध में क्या विचार हैं ?

शिमला में राष्ट्रपति निवास में भारत सरकार का एक अध्ययन केन्द्र है-Indian Institute of Advanced Study जहां विद्वानों को उच्च अध्ययन की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। इस संस्थान ने 1994 में एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसका शीर्षक है Jharkhand Movement-Ethnicity and Culture of Silence इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने यह मत प्रतिपादित किया है कि झारखंड में कुछ जातियां सिंधु घाटी सभ्यता क्षेत्र से भी आकर बसी हैं।[23]

उपर्युक्त पुस्तक के एक परिशिष्ट में वह ज्ञापन भी दिया गया है जो उसने 1989 में राष्ट्रपति एवं गृहमंत्री को दिया था। इस ज्ञापन में धर्म शीर्षक के अन्तर्गत निम्न प्रकार कहा गया है-"A detailed examination of religion, fear, faith and belief of the people of Jharkhand will reveal the traditional hatred towards Brahmanical and Vedic suppremacy[24]...... the Jainis (Sarakh Majee), Buddhistis, Christians, Muslims, Momins, Sikhs and Brahmans are living side by side peacefully and there are no instances in the historical past of any communal disturbances."[25]

उपर्युक्त उद्धरण से यह संकेत मिलता है कि छोटा नागपुर क्षेत्र में (1) कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो सिंधु सभ्यता की अवशेष हैं और (2) शांतिपूर्वक निवास करने वाली जातियों में सराक जाति अग्रगण्य है। इस जाति के सम्बन्ध में पाश्चात्य लेखकों ने जो विभिन्न वर्णन लिखे हैं, उनमें उसे शांतिपूर्वक रहने वाली जाति कहा है।

हड़प्पा, मोहन जोदड़ो से प्राप्त कुछ सीलों तथा लोहानीपुर से प्राप्त तीर्थंकर धड़ से यह प्रमाणित होता है कि सिंधु सभ्यता में भी जैनधर्म का अस्तित्व था। उल्लिखित सभ्यता का आर्यों से संघर्ष हुआ जिसमें मूल निवासियों के किले, ग्राम, आदि नष्ट कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिए गए। परिणामस्वरूप उन्हें अपना मूल स्थान छोड़ना पड़ा। अन्ततः वे मगध में सिमट आए।

कुछ लोग यह भ्रामक प्रचार करते हैं कि पार्श्वनाथ से पहले जैनधर्म का अस्तित्व नहीं था। इस विषय में मगध विश्वविद्यालय के प्रो० उपेन्द्र ठाकुर का मत स्थिति को अत्यन्त स्पष्ट कर देता है। उन्होंने लिखा है, "The notion that Jainism arose out of Buddhism or that it was founded by Mahavira, a contemporary of Buddha, has now been proved to be erroneous. On the other hand, the origin of Jainism can be traced back to the Vedic age.[26]

ऋगवेदिक आर्यों का भी संघर्ष उन लोगों से हुआ था जो यज्ञ नहीं करते थे (अयज्वान), अन्यव्रत वैदिक व्रतों के अतिरिक्त अन्य व्रत का पालन करते थे, अ-कर्मा (क्रिया-कांड नहीं करते थे) इत्यादि। इस संघर्ष में भिन्न धर्म मानने वालों की पराजय हुई और उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ा।

पं० कैलाशचन्द्रजी ने डॉ० भंडारकर का यह मत उद्धृत किया है, "ब्राह्मण काल तक अर्थात् ईसा पूर्व 900 के लगभग तक पूर्वीय भारत के चार समूह, मगध, पुंड्र और चेरपाद आर्य सीमा के अन्तर्गत नहीं आए थे।" यह समय पार्श्वनाथ के समय के आसपास का है। मगध, पुंड्र आदि में सराक जाति की विद्यमानता इस काल में संभव है। उसके द्वारा पार्श्व को अपना आराध्य मानना इस तथ्य का समर्थन करता है। इस काल में मगधवासियों के प्रति आर्यों की भावना अहित की जा रही जान पड़ती है। कैलाशचन्द्रजी के अनुसार, "सर्वप्रथम मगध का नाम अथर्ववेद (5-22-14) में आता है। वहां यह प्रार्थना की गई है कि गन्धाटियों, मुजनवनों और अंगों तथा मागधों के देश में ज्वर फैल जाये..... मागधों के प्रति इस प्रकार के भाव का संभावित कारण यह है कि मागधों का ब्राह्मीकरण नहीं हो सका था।"[27]

पार्श्वनाथ के काल से लेकर मौर्य साम्राज्य के अंत तक सराक मगध में सुरक्षित रहे जान पड़ते हैं क्योंकि उस कालावधि में मगध का शासन शिशुनाग वंश, नंद वंश और मौर्य वंश के हाथों रहा। ये सभी वंश जैन धर्म के अनुयायी थे।

ईसा से 184 वर्ष पूर्व या 2178 वर्ष पूर्व पुष्यमित्र ने मौर्य साम्राज्य का अंत कर दिया। उसने यह घोषणा कर दी कि जो भी श्रमण का सिर काट कर लाएगा उसे मैं सौ दीनार दूंगा। बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान में यह उल्लेख है, "यो मे श्रमणशिरो दास्यति। तस्याहं दीनारशतं दास्यामि।।" उस समय श्रमण शब्द का प्रयोग बौद्धों के लिए भी होता था। बौद्ध तो पेशावर की ओर प्रयाण कर गए। श्रावक या सराक हजारी बाग के रास्ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झारखण्ड के अधिक सुरक्षित वनों, घाटियों तथा पहाड़ियों में शरण लेने का बाध्य हुए जान पड़ते हैं। यह मत समीचीन लगता है कि सराक जाति का छोटा नागपुर क्षेत्र में लगभग 2100 वर्ष पूर्व आव्रजन (immigration) हुआ होगा। वे अपनी मुख्य धारा से दुर्गम स्थानों में बस जाने के कारण संभवतः कट गए।

जो शैव और वैष्णव भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत में जैनों के लिए अशुभ सिद्ध हुआ था, उसकी आंधी ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में उत्तर भारत में भी आई। उसकी चपेट में सराक जाति भी आ गई जान पड़ती है। उसके सदस्यों को अपनी रक्षा के लिए संभवतः अपना धर्म भी बदलना पड़ा किन्तु उसने अपने संस्कार नहीं छोड़े और उन्हीं के कारण यह पहिचान संभव हो सकी है कि यह जाति किसी समय जैन थी।

जैन मुनियों, श्रावकों, लेखकों आदि ने तो संभवतः सराक जाति को भुला दिया किन्तु उनकी याद दिलाई ब्रिटिश काल के उन आई० सी० एस० अफसरों ने जिन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के गजेटियरों का संकलन किया। इन अधिकारियों को अपने क्षेत्र की वनस्पति से लेकर विभिन्न जातियों, उनके धार्मिक विश्वासों आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। उनके साथ पुरातत्वविद भी सहयोग करते थे। रिसले ने तो अपनी Ethnological Glossary of Bengal के लिए 390 प्रश्नों की एक प्रश्नावली बनाई थी।

जिन गजेटियरों में सराक जाति सम्बन्धी विवरण उपलब्ध है, उनका संकलन 1907 से लेकर 1918 तक हुआ है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इनके जो संस्करण निकले हैं, उनमें बहुत कुछ संशोधन-परिवर्तन कर दिया गया है। राज्यों और जिलों के पुनर्निधारण के कारण भी तथ्य इधर-उधर हो गए हैं। जिन पुराने गजेटियरों में सराकों सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध है, उनकी यथाशक्ति संकलित सूची निम्न प्रकार है-

1. बालसर उड़ीसा 1907
2. पुरी 1908
3. बंगाल गजेटियर 1910, पुनर्मुद्रण 1958
4. बर्दवान 1910
5. बीरभूम 1910 पुनर्मुद्रण 1975
6. मानभूम 1911
7. हजारीबाग 1917
8. मालदा 1918
9. धनबाद 1981
10. बांकुड़ा 1968

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11. रिसले की Ethnological Glossary of Bengal पुनर्मुद्रण 1981

12. इम्पीरियल गजेटियर बंगाल सीरीज, पुनर्मुद्रण 1984

13. रांची गजेटियर 1970

14. कूपलेंड Final Report of the Survey and Settlement Operations of the District of Manbhum 1918-1925.

15. सिंहभूम गजेटियर 1958

16. बांकुड़ा गजेटियर 1968

अंग्रेज अफसरों के ये गजेटियर जब प्रकाशित हुए, तो कलकत्ता के श्रावकों को अपने सराक बंधुओं के उद्धार की चिंता हुई। वहां 1920 में एक "प्राचीन श्रावकोद्धारिणी सभा" का गठन हुआ। उसके मंत्री श्री बैजनाथ सरावगी ने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी को प्रेरणा दी कि वे बिहार, बंगाल और उड़ीसा के विभिन्न गजेटियरों का अध्ययन कर सराक जाति और उसके प्राचीन मंदिरों, मूर्तियों आदि से संबन्धित जानकारी एकत्रित करें। तदनुसार शीतलप्रसादजी ने उपर्युक्त प्रान्तों के जिलेवार गजेटियर पढ़कर जो सामग्री संकलित की, वह "बंगाल, बिहार, उड़ीसा के स्मारक" नामक एक छोटी पुस्तक के रूप में 1923 में प्रकाशित हुई। केवल सराकों सम्बन्धी जानकारी उन्हें छह गजेटियरों में मिली, उनके नाम हैं-मानभूम, सिंहभूम, बीरभूम, पुरी, बालासर और बर्दवान।

ब्र. शीतलप्रसादजी केवल सूचनायें एकत्रित कर ही संतुष्ट नहीं हुए अपितु उन्होंने रांची, मानभूम, सिंहभूम आदि के 20 स्थानों का दौरा किया और सराकों को पार्श्वनाथ के धर्म का उपदेश दिया। कुछ स्थानों पर उन्होंने मन्दिर-निर्माण भी करवाया तथा भगवान की प्रतिमाओं के पूजन की विधि भी बतलाई। बेलुआ ग्राम की अपनी यात्रा के वर्णन में उन्होंने लिखा है, "इस ग्राम के सराक जब चलते हैं, तब वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनसे किसी प्राणी का घात न हो" उन्होंने रांची के 23 गावों तथा मानभूम के 13 ग्रामों के नाम दिए हैं जहां सराक बसते हैं। उन्हें श्री ज्योतिप्रसाद नामक एक सज्जन से उड़ीसा के 52 सराक ग्रामों की एक सूची भी प्राप्त हुई थी। शीतलप्रसादजी को यह भी ज्ञात हुआ था कि उड़ीसा के सराक आलू, गोभी भी नहीं खाते हैं। उनके बाद संभवतः यह कार्य आगे नहीं बढ़ा।

लेखकों में श्री पी० सी० राय चौधरी और डॉ० हीरालाल जैन ने भी बिहार में सराकों सम्बन्धी सूचना दी है। डॉ० जगदीशचन्द्रजैन ने अपनी पुस्तक Studies in Early Jainism में सराक जाति का उल्लेख कर उसका सम्बन्ध पार्श्वनाथ और महावीर से जोड़ा है। पं० बलभद्रजी ने भारत में दिगम्बर जैन तीर्थ-बिहार, बंगाल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उड़ीसा-खण्ड में एक परिशिष्ट में सराकों और उनके क्षेत्र के मंदिरों, मूर्तियों एवं भग्नाशेषों की जानकारी दी है। डॉ० नीलम जैन ने अपनी लघु पुस्तिका "सराक क्षेत्र : प्रगति की राह पर" में जैन समाज द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किए जा रहे प्रयासों की विस्तृत एवं अद्यतन सूचनाएं दी हैं।

ब्र. शीतलप्रसादजी के ठोस प्रयासों को सक्रिय एवं तीव्र गति देने में मुनिवर उपाध्याय ज्ञानसागरजी का योगदान स्तुत्य है। उन्होंने चार चातुर्मास सराक क्षेत्र में किए और पार्श्वनाथ की परम्परा के सराकों को पुनः श्रमण धारा में दीक्षित किया है। वे जयवंत हों।

संदर्भ सूची

1. Final Report of the Survey and Settlement Operations in the District of Mambhum (1918-1925) quoted in Dhanbad Gazetteer, 1964.
2. Bihar District Gazetteer, 1957
3. Ranchi Gazetteer
4. Department of Anthropology Memoir No. 27, 1956
5. Imperial Gazetteer of India, Provincial Series, Bengal, Vol.2, Rep. 1984.
6. Census of India, Vol. 5, 1913
7. डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० 6
8. Bankura Gazetteer, 1968
9. Birbhum Gazetteer, 1975
10. Bengal Gazetteer, Puri, Rep. 1984
11. Risley, Ethnographic Glossary, Rep. 1981
12. Gazetteer-Singhbhbhum, Saraikela & Kharaswan, 1910
13. ibid 11
14. Sarkar, Binoykumar, Folk Element in Hindu Culture, 1972
15. ब्र० शीतलप्रसाद, बगाल, बिहार, उड़ीसा के स्मारक, 1923
16. मुनि नथमल, श्रमण महावीर, 2500 निर्वाण वर्ष
17. नेमिचन्द्र शास्त्री, भगवान महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, पृ० 157
2०. उपर्युक्त 15, पृ० 113, 109
21. Potorson, District Gazetteer, Burdwan, 1910, p.1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

23. Basu Sajal, Jharkhand Movement-Ethnicity and Culture of Silence, Shimla, 1974, p.3
24. ibid 23, p.130
25. ibid 23, p.116-117
26. Thakur, Upendra, Studies in Buddhism and Jainism in Mithila, Benaras, 1964.
27. शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र, जैन साहित्य का इतिहासए-पूर्व पीठिका, बनारस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन संस्कृति की पोषक सराक प्रजाति

कान्ति जैन
ग्वालियर

कुछ अधिकारी विदेशी और भारतीय विद्वान जैन मत को प्राचीनतम जीवित धार्मिक परम्परा मानते हैं क्योंकि उसमें आदिम युग में जन्मी प्रकृतिवादी सर्वजीववादी पर्यावरण संरक्षणवादी, अहिंसावादी पूर्व मान्यताऐं आज भी जीवित रूप से मौजूद हैं। जैन परम्परा निश्चय ही अवैदिक है। ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक जो छठी शताब्दी ई०पू० के पूर्व इतिहास पुरुष थे। चौबीस तीर्थंकर मनीषियों ने इस परम्परा का मार्गदर्शन किया। वैदिक कर्मकाण्ड तथा औपनिषदिक ब्रह्मवाद इसे सामान्य रूप से अमान्य है। अस्तित्व के दुःखमय होने की तीव्र एवं त्रासदायी अनुभूति व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा उससे मुक्ति की संभावना में विश्वास तथा परिकल्पना जैनमत में ही है।

संस्कृति के प्रजातीय उद्गम स्रोतों को समझने के लिये प्रजाति विषयक मूलभूत अवधारणा को समझ लेना आवश्यक है। प्रजाति मानव समुदाय के एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप का द्योतक है। जो कि मानवों के एक विशिष्ट सामाजिक संगठन द्वारा निर्मित होता है और उनके सामाजिक अस्तित्व की विशिष्टता को चरितार्थ करता है और विकसित होता है। एक प्रजातीय समुदाय अपने सदस्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्धों के माध्यम से रूपाकार ग्रहण करता है। एक प्रजाति का एक भाषा के साथ निकट का सम्वन्ध होता है फलतः भाषा प्रजाति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तून्मुखी लक्षण के रूप में ही नहीं वरन् उसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रतीक के रूप में भी स्थित रहती है। एक प्रजाति के सदस्यों की सांस्कृतिक एकता अखण्डनीय होती है।

सराक प्रजाति एक एकीकृत मानव समूह है जो अपनी एकता को स्वीकार करता है और अन्य जनजातियों मानव समूहों से अपनी भिन्नता के प्रति जागरूक रहता है। एक प्रजाति के सदस्यों में व्याप्त एकता की ऐसी चेतना सामान्यतः प्रजातीय आत्म चेतना या सारूप्यता कहलाती है। एक प्रजाति की सारूप्यता उसके सदस्यों की जन्म भूमि मातृभाषा सांस्कृतिक एवं मानसिक विशिष्टता तथा वंशपरम्परा एवं इतिहास से सम्बद्ध सारूप्यता पर आधारित रहती है। इस प्रकार एक प्रजाति को एक ऐसे स्थिर मानव समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका इतिहास एक विशिष्ट भू-भाग से सम्बद्ध रहा हो जिसके सदस्य, भाषा, संस्कृति, खानपान, मानसिकता की दृष्टि से एक हों और अपनी तद्विषयक एकता कथ्य अपने जैसे अन्य मानव समूहों से अपनी तरंगतर भिन्नता के प्रति जागरूक हों और जिसका अस्तित्व एक निश्चित नाम संसूचित किया जा सकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो। सराक प्रजाति भगवान पार्श्वनाथ एवं वर्धमान को कुल देवता मानती है।

विहार सराक बहुल क्षेत्र है जहां की शुष्क आवोहवा ने संतों को इस स्थल में विचरण के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया है। कारण नमी का अभाव जीवों की बहुलता को रोकता है। जरा सोचिये तो जहां संत विचरे कैसा विवेक प्रधान होगा वह क्षेत्र ? छोटे-मोटे जीवों को भी बचाने में कितना प्रयत्नशील ? यहां जैन श्रावकों का सदैव वर्चस्व रहा है तभी तो तीर्थंकरों-आचार्य उपाध्याय-मुनियों ने यहां सदैव बहुलता से विहार/विचरण किया है। सराक शब्द श्रावक का बिगड़ा हुआ रूप है।

सराक जाति के लोग ब्रह्म मुहूर्त में उठते हैं चारपाई से उठते समय णमोकार पढ़ते हैं और चारपाई उठाकर खड़ी कर देते हैं। चारपाई बिस्तर दिन भर बिछे नहीं रहते। सर्वप्रथम 2 छन्नों में पानी छानना एक विशिष्ट कार्य था। पानी के बासी मटके को धोकर दूसरे में छान देने के पश्चात् कुंए से ताजा पानी भरा जाता है। पानी छानने के बाद छन्ने को घैले से एक जलपात्र में उलटकर धोया जाता है, ताकि जीवाणु पुनः जल में आ जायें और वह जल फिर से कुएं में डाल दिया जाता है इसे विच्छन कहते हैं। पीने योग्य पानी को घनौथी पर रखा जात है यह ऊपर रखा जाता है तथा सूर्य की किरणों के निरन्तर सम्पर्क में रहे इसका ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक बर्तन को ढककर रखते हैं। सूर्य की किरणों के सम्पर्क में यह जल ऊर्जावान तथा घातक बैक्टीरिया रहित प्रासुक हो जाता है। शायद ही विश्व में अन्यत्र कहीं यह प्रक्रिया होती होगी, मात्र जीव दया के लिये। इसके बाद ही महिलाओ का रसोई में प्रवेश होता है।

सराक महिलाओं को वंश परम्परा से ही यह शिक्षा मिली होती है कि चौके में झाडू लगाए बिना चूल्हे को कपड़े से झाड़कर साफ किये बिना चूल्हा जला देना अमंगल सूचक है। रोज नियमित रूप से चौके की छत-खिड़कियों पर से धूल झाड़ देने से 2 उपवास का फल मिलता है ऐसी उनकी धारणा है। जब कि इसकी गहराई में जीवदया का भाव है। चूल्हे को झाड़ने से रात्रि में आ बैठे सूक्ष्म जीव उसके जलने से पूर्व ही सुरक्षापूर्वक निकल जायें और छत दीवालों पर जाले आदि न जमने पायें ताकि जीवों का घात का अवसर ही उपस्थित न हो। गांवों में चूल्हे की छत पर चंदों का लगाने का भी रिवाज है जिससे खपरैल/मिट्टी की छत/लकड़ी की कड़ी की छत रेंगता कोई सूक्ष्म जीव या बड़ा जीव चूल्हे पर उबलते पदार्थ में या चूल्हे में कहीं गिर न जाये या अपने मुख का विष या लार भोजन पदार्थ में गिरा न दे। छिपकली और अन्य ऐसे जीव तो प्रायः दीवालों पर घूमते हैं उनसे बचने का यह सर्वोत्तम विवेकपूर्ण उपाय इसके पास हैं। चौके में पहनने तथा चौके में प्रयोग किये जाने वाले कपड़े रोज धोकर खुली धूप में सुखाये जाते हैं। सराक क्षेत्र उड़ीसा, बिहार में कहीं-कहीं जलाभाव है इसलिये राख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से सूखे बर्तन मांजने का प्रचलन है किन्तु बर्तनों को मांजने से पूर्व उसमें लगा अन्नांश पानी से धोकर घर के बाहर बनी कुण्डी में डाल दिया जाता है, जिसे गाय बैल चलते फिरते पी जाते हैं। वैसे तो राख में मंजे बर्तनों को कपड़े से रगड़कर साफ कर लिया जाता है फिर भी खाना बनाने के बर्तनों को फिर से स्वच्छ जल से धोकर काम लेते हैं और धोबन को एकमात्र पात्र में अलग रख दिया जाता है। दूज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस, चतुर्दशी आदि तिथियों को हरी तरकारी चौके में नहीं बनती है। जमीकंद, आलू, शकरकंद आदि भी कुछ लोग अपने घर में नहीं बनाते हैं। जो आलू खाते हैं वे होली से दीवाली के बीच खाते हैं। वृक्षों पर पहले आये फलों को देवालय में चढ़ाते हैं उन्हें नहीं खाते।

बाइस अभक्ष्यों में द्विदल भी प्रधान है। द्विदल अर्थात् वह अन्न जिसके दलने पर समान दो टुकड़े हो जायें जैसे अरहर, मूंग, चना इत्यादि। कहते हैं इनके साथ कच्चे दही का प्रयोग अभक्ष्य हो जाता है अर्थात् जब कढ़ी में या दही बड़ों में दही डाला जाता है तो गर्म करके डालने की प्रथा है ताकि वह अभक्ष्य न हो जाये। तरकारी के लिये भिगोए गए, चना राजवां, मोंठ, मटर रात्रि के बारह बजे के बाद भिगोए जाते हैं ताकि अंकुरित होकर अभक्ष्य न हो जाये। रसोई बनाते समय या बाद में खाद्य वस्तुओं को ढककर रखना तो एक प्रधान कर्तव्य माना जाता है। भूलवश यदि रात्रि में कोई खाद्य वस्तु (रांधी हुई) उघाड़ी रह जाती है तो उसे पशुओं के खाने के लिये डाल दिया जाता है। सुबह का बना खाना शाम को तो सराक समाज प्रयोग में लाते हैं किन्तु बासी भोजन का निषेध अभी भी है। बचे हुए फुलकों रोटियों को तुरन्त तवे पर सेंक कर खरा बना लिया जाता है ताकि वे फफूंदी या बैक्टीरिया रहित रह सकें। घर में पापड़ बनाने पर लोई बासी न हो जाये। उन्हें बेल लिया जाता है चाहे रात के बारह ही क्यों न बज जायें। जूठे बर्तनों को शीघ्र ही साफ किया जाता है क्योंकि मुंह के थूक लार के स्पर्श से उनमें एक घड़ी पश्चात् ही असंख्य संमूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। सराक बुजुर्गों में इसी लिहाज से खाना खाने के पश्चात् थाली धोकर पीने की परम्परा है। जीवदया के विचार से गर्म तवा कभी जमीन पर नहीं रखा जाता है। गर्म जल, मांड आदि नाली/मोरी में नहीं डाला जाता है क्योंकि उनसे सूक्ष्म जीवों के जलकर मर जाने का भय रहता है। कोयले यदि बुझाये जाते हैं तो किसी गमले आदि पात्र को उलटकर उन पर रख दिया जाता था, पानी डालकर बुझाना निषिद्ध था, क्योंकि इनसे अग्निकाय और जलकाय के जीवों का संघात होता है।

सराक बन्धुओं के घरों में आटा बेसन आदि अधिकांशतः हर सप्ताह ही पीसने का रिवाज और परम्परा है किन्तु मिर्च मसाले का व्यवहार 1/2 माह तक चलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवश्य ही इन्हें बड़े यत्न से रखा जाता है। घर की गाय का दूध, दही, घी ही अधिकांशतया काम में लाया जाता है। घी को लोंग डालकर कड़काया जाता है ताकि उनमें जीवोत्पक्ति न हो। इसी भांति चलित रस अर्थात् वस्तु जिसका स्वाद बदल गया हो काम में नहीं लायी जाती है। कहीं-कहीं तो जीवदया का इतना सूक्ष्म विवेक देखा जाता है कि चाकू छुरी आदि को तरकारी की टोकरी में नहीं रखा जाता है। मान्यता है कि आखिर वनस्पति जीव है और उसके अविचेतन में छुरी के प्रति एक अज्ञात भय है। ऐसे अनाज जिनमें लट इल्लियां आदि पैदा हो गई हों उन्हें धूप में डालकर छाँव में फैलाया जाता है ताकि ये बिना कष्ट के निकल जायें। अचार मुरब्बे भी अधिक अवधि तक रखे हुए नहीं खाये जाते। फफूंदी लगे अचार तो फेंक ही दिये जाते हैं।

रसोई घर को वास्तुकला की परम्परा के अनुसार सराक लोग बनाते हैं:-

(1) ईशान कोण में पानी रखने का स्थान बनाते हैं ताकि दिनभर पात्रों पर पूरी-पूरी धूप रहे और पानी का स्थान सूखा बना रहे सूक्ष्म जीवों का जमाव न हो सके।

(2) रसोई घर दक्षिण-पूर्व या उत्तर--पश्चिम की ओर बनाए जाते हैं इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। 80 प्रतिशत हवाऐं दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व या उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हैं जो वायु दुर्गन्ध को मकान से दूर बहा ले जाती हैं। बैक्टीरिया मच्छर आदि भी हवा के बहाव में आगे चले जाते हैं।

(3) रसोई घर के आगे या पीछे एक बरामदा बनाने की प्रथा है इसके मुंह द्वार उत्तर या दक्षिण पूर्व की ओर रहता है।

(4) मकान को चारों ओर से खुला छोड़ते हैं छोटे मकानों में भी कम से कम दो ओर वातायनी रखी जाती है।

खाना बन जाने के पश्चात् आंगन से चौके तक कहीं भी जल नहीं रहने दिया जाता है। रात्रि भोजन वे ही युवक करते हैं जिन्हें दुकानें देर से बन्द कर घर लौटना पड़ता है।

जिस प्रकार हिन्दुओं में अतिथिदेवो भव का आदर्श प्रचलित है उसी प्रकार जैनियों में "अतिथि संविभाग" का है। सराक के घर में किसी अतिथि विशेषकर स्वधर्मी बन्धु का आना तो सुखद एवं उल्लासमय होता है। चूल्हे पर तवा चढ़ाते ही पहले गाय, कुत्ता, मेहतरानी, परायतनी (सड़क झाड़ने वाली) के लिये रोटी बनाई जाती है।

अन्य परम्पराऐं बहुत सात्विक और बेजोड़ हैं बड़ी सुखद आश्चर्य होता है कि घोर मांसाहारियों शराबियों के बीच रहकर भी ये सराक अपनी संस्कृति को कैसे बचाए हुए हैं। रसोई की क्रिया पर बहुत विवेक से ध्यान दिया जाा है। स्त्रियाँ बगैर स्नान किये न तो भोजन बनाती हैं न ही परोसती हैं न ही कोई घर का सदस्य खाना खाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रियां रजस्वला होने पर 3 दिन तक भोजन नहीं बनाती और कोई वस्तु नहीं छूता, पेशाब जाने के बाद शुद्धि करती हैं और शौच के उपरान्त स्नान अनिवार्य रूप से करती हैं। स्त्रियां जितनी बार भोजन शाला में प्रवेश करेंगी उतनी बार कपड़े बदलती हैं। घर के ज्येष्ठों के उपरांत स्त्रियां भोजन करती हैं। घर से बाहर यात्रा पर जाने वाले सराक भाई पक्का भोजन साथ ले जाते हैं होटल रेल बस का भोजन नहीं करते। मकान के दरवाजे अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और अष्टाह्निका पर गोबरी से लीपे जाते हैं। सूतक पातक का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। सूतक 10 दिन का और पातक 13 दिन का मानते हैं। सूतक में स्त्री 30 दिन बाद बाहर निकलती हैं और 42 वें दिन भोजन बनावेगी। पौष माह तथा चैत्रमाह में सीताफल शरीफा, कद्दू नहीं खाते, माघ माह में लौकी नहीं खाते। साधुओं को भोजन पुरुष ही बनाते हैं। सराकों में पर्दा प्रथा नहीं है। मट्ठा बिलोने के लिये खड़ी होकर मट्ठा बिलोती हैं बर्तन को पैर नहीं लगने देती हैं न ही पानी के बर्तन को पैर लगने देते हैं। अपने नाम के आगे मांझी, मण्डल, लामक, सिंह, गायन, पात्र, वैष्णव, चौधरी आदि लिखते हैं। कुछ लोक आचार्य, सराक, अधिकारी रंगणी भी लिखते हैं।

सराक जाति के गोत्र चौबीस तीर्थंकरों के नाम पर होते हैं जैसे आदिदेव, शांतिदेव, गौतम, धर्मदेव, सांडिल्य। कुलदवता भगवान पार्श्वनाथ को मानते हैं कुछ लोग महावीर भगवान को अपना कुल देवता मानते हैं। कुछ के गोत्र ऋषभदेव, जिगगेश, अनंतदेव, ब्रह्मदेव, पारासर भी मिलते हैं।

रांची, सिंहभूमि जिले में सराक जाति तीन भागों में विभक्त है– मूल, सिकरिया सराक एवं कड़ासी सराक वर्तमान में मूल सराक एवं सिकिरिया सराक दो भागों में विभाजित है यहां आज भी सराक जाति के लागे ऋषभदेव स्वामी के बताये हुए मार्ग पर चलकर कृषि कार्य करते हैं। सराक जाति के लोग सात लाख तक होंगे। बिहार, बंगाल, उड़ीसा में सराक जाति के 4०० गांव हैं। रांची के निम्न गांव नौड़ी, तमाड़, हुसण्डी, तड़ाई, नवाडीह, हराडीह, देवलटाण, आगसिया, वौपड़ी, चौंकाटाड, पारसडीह में सराक बहुलता से रहते हैं उनमें जैन धर्म के प्रति जागृति दिखाई देती है। उड़ीसा के सराक रंगिया कहलाते हैं जो कटक जिले में 51 गावों में रहते हैं। पूरे उड़ीसा में 385 गांव हैं। रंगिया ही रंगणी कहलाते हैं। उड़ीसा प्रान्त के कुछ गांव जो कटक और वहरामपुर के पास है रंगणी जाति के जैनों का निवास है। ये रुगड़ी, नुआमारणां, मणिया-वध, जरियाटणां, बालूवंशी में देखे गए हैं। यह जानकारी डॉ० शचिराउत रॉय द्वारा कटक से मिली है।

गोत्रों के हिसाब से देखें तो रंगणी जाति की गोत्रावली परवार जैनों की गोत्रावली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से बहुत कुछ मिलती है-

उड़िया अहाता-

	सराक और रंगणी गोत्र-	धन्धा	परवार गौत्र
(1)	अनंत देव	बजाजी	ओछलभूर
(2)	खेमदेव	"	खोनामूर
(3)	काश्यपदेव	"	कासल्यपूर
(4)	कृष्णदेव	"	कोछलमूर

बंगाल अहाता-

(1)	आदि देव		आदिमूर
(2)	अनंतदेव		ओछलमूर
(3)	धर्मदेव		धनामूर
(4)	काश्यप देव		कासल्यमूर

इसका विशेष परिचय जानने के लिये ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद कृत "प्राचीन जैन सराक इतिहास" उड़िया और बंगला भाषा में प्रचलित है। इससे स्पष्ट होता है कि परवार समाज के कुछ लोग उड़ीसा और बंगाल प्रान्त में बसे थे। उड़ीसा और बंगाल में जो रंगणी जाति के लोग पाये जाते हैं उनके गोत्र परवार जाति के ही हैं उनसे भिन्न नहीं। इनमें कुल देवता के रूप में जैन तीर्थंकरों के रूप में जैन तीर्थंकरों के नाम हैं तथा पूजे जाते हैं।

सराक लोगों में धार्मिक जागृति के प्रति गणेश प्रसाद वर्णी, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद, श्री बाबूलाल जमादार, बैजनाथ सरावगी, श्री हरखचन्द पाण्डया ने सराहनीय कार्य किया है। 1983 में आचार्य श्री विद्यासागर जी इसके पश्चात् 1992 में पू० उपाध्याय ज्ञानसागर जी ने जो अलख जगायी इससे समाज में एक अनुपम ज्योति लगी है। उनकी प्रेरणा वरदान सिद्ध हुई है। महाराज श्री का प्रयास एक इतिहास होगा और अन्य गुरुओं के लिये प्रेरणा और अनुकरणीय कार्य होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक क्षेत्र में आर्थिक कार्यक्रम
(सर्वेक्षण के आधार पर)

डा० उपश्रेणिक जैन,
कोर्ट रोड, सहारनपुर

सराक क्षेत्र लगभग दस लाख जनसंख्या का क्षेत्र है। बहुक्षेत्रीय विभिन्नता का संगठन है। इसीलिए उसके अनुरूप समस्या पहचानने एवं समझने की विशेष जरूरत है। इसे समझने के लिए हमें सराक क्षेत्र के एक गांव के अध्ययन चित्र को समझना होगा। हमने बिहार राज्य के एक ग्राम देवदा मशुरिया का सर्वेक्षण करवाया।

यहाँ शैक्षणिक स्थिति पुरुषों में सामान्य है और स्त्रियों में शून्य है। इस गाँव की जनसंख्या तीन हजार के लगभग है। परिवारों की संख्या का विवरण इस प्रकार हैः-

क्र०सं०	मानव सम्पदा पेशागत परिवार	परिवार संख्या	शैक्षणिक स्थिति		आर्थिक स्थिति
			स्त्री	पुरुष	
1.	बुनकर परिवार (जुलाहा)	250	3%	15%	
2.	छोटे व्यवसायी-खेतीहर	200	15%	15%	
3.	गृहहीन कृषक श्रमिक	15	0%	0%	
4.	कुम्हार परिवार	9	10%	15%	बहुत ही शोचनीय
5.	राजमिस्त्री	5	3%	3%	
6.	पशुपालक-खेतीहर	10	3%	10%	
7.	वस्त्र बुनाई कारीगर	2	0%	10%	
8.	लोह काष्ठ शिल्पी	5	0%	10%	
9.	चर्मशिल्पी अन्य	4	0%	15%	
10.	केश प्रसाधन शिल्पी	2	3%	15%	
11.	वस्त्र सिलाई शिल्पी	10	3%	15%	
12.	अन्य	5	15%	15%	
		600			

उपलब्ध सम्पदा चित्र में दर्शाई गई जनसंख्या (अनुमानित 3000 जनसंख्या) सीधी, सरल एवं परिश्रमी स्वभाव की है। इसमें आधी जनसंख्या स्त्रियों की है। स्त्री जनसंख्या पर काफी अध्ययन की जरूरत है। आर्थिक व्सवस्था में स्त्री श्रम की भूमिका काफी सराहनीय है। किन्तु दुःख की बात है कि स्त्री जनसंख्या की भूमिका अब तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय मान्यता के सन्दर्भ में नगण्य सी है। सब मिलाकर 3000 जनसंख्या एक शोचनीय अवस्था में है-गरीबी-बेरोजगारी-निरक्षरता-जानकारी के अभाव में रह रही है।

कृषि भूमि सुविधा-गाँव के चारों तरफ में फैली 300 एकड़ कृषि भूमि की सुविधा प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त है। प्रति परिवार की हिस्सेदारी पर सिर्फ आधा एकड़ प्रति परिवार का हिस्सा बनता है एवं आधा एकड़ भूमि से पांच क्विंटल धान प्रतिवर्ष मिलता है जिसका बाजार मूल्य 1700 रुपये होता है। अतः कृषि भूमि लाभ की सहज ही में स्थिति समझी जा सकती है।

विकास संभावनाऐं 200 प्रतिशत से भी अधिक की अनुमानित की गई है। सिर्फ धन व्यवस्था की आवश्यकता है।

वानिकी सुविधा-3000 जनसंख्या वाले ग्राम में वानिकी स्थिति डरावनी है। गाँव में उपलब्ध इनेगिने वृक्ष किसी एक जगह खड़े होकर गिने जा सकते हैं। इनमें जामुन-2, पीपल-2, आम-5, ताड़ खजूर-40, बांस-बेड़ा-4, अन्य 15 शामिल हैं। ग्राम वानिकी तथा कृषि वानिकी के प्रसार प्रचार व सुविधा के बावजूद ये गांव सरकारी कार्यक्रम का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

पशुसम्पदा सुविधा-	खेती हेतु बैल	50-60
	गाय-भैंस संख्या	170
	भेड़-बकरी संख्या	250

उद्योग उपकरण सम्पदा सुविधा-इस गाँव में उद्योग के असीम क्षेत्र उपलब्ध हैं। इसके साथ ही उद्यम में काम आने वाले सभी उपकरण भी उपलब्ध हैं, फिर भी गांव विकास लक्ष्य से दूर है-क्यों ?

उपकरण चित्र-

1. गाँव में अनुमानित 200 हथकरघा संयन्त्र हैं।
2. गाँव में 1000 कुशल हथकरघा कारीगर हैं।
3. गाँव में 500 महिला हथकरघा सहकुशल कारीगर हैं।
4. गाँव में 40 से अधिक कुशल मिट्टी शिल्पीकार हैं।
5. गाँव में 8 से अधिक कुम्हार चाक संयन्त्र हैं।
6. गाँव में 100 से अधिक गृहहीन कृषक श्रमिक हैं।
7. गाँव में 10 से अधिक सिलाई मशीन हैं।
8. गाँव में 40 से अधिक चटाई बुनाई जानकार महिला हैं।
9. गाँव में 20 से अधिक कुशल पशुपालक हैं।
10. गाँव में 2 सार्वजनिक तालाब हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11. गाँव में 20 से अधिक लोहार-चमार-चर्मशिल्पी कारीगर हैं।

विकास संभावनाओं को सही दिशा दी जाये तो यह गांव स्वावलम्बी ही नहीं निर्यात की स्थिति में आ सकता है।

विकास कार्यक्रम के सरकारी कदम-आज भारत के सभी गाँवों में 100 से भी अधिक विभिन्न सरकारी विकास कार्यक्रम विभिन्न संस्थानों द्वारा चलाये जाने की सूचना है। स्थानीय अध्ययन से पता चलता है कि उक्त गाँव भी इस विकास कार्यक्रम की सूची में आता है।

सरकारी विकास कार्यक्रम-

विकास क्षेत्र	सरकारी कार्यक्रम के संक्षिप्त नाम		संख्या
भूमि संरक्षण	कम्पोस्ट निर्माण	रासायनिक खाद व्यवहार	
	पौधा संरक्षण	भंडारण	
	कृषियंत्रपति	मिट्टी सुधार	
	फल संरक्षण	भूमि संरक्षण	
	कृषक प्रशिक्षण	बीज उत्पादन	
	कृषि विपणन,	चूहा दगन	12
कृषि क्षेत्र	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रयोगशाला से खेत तक	
	वाटर शेट मैनेजमेंट	भूमि सुधार	
	फसल बीमा	कृषि सूचना प्रसार-प्रशिक्षण	
	लघु सिंचाई	मध्यम सिंचाई	
	नदी जल उत्तोलन	कृषि वानिकी	
	नलकूप	कृषक पेंशन	
	डी० आर० डी० ए०		13
बागवानी	बाग-बगीचा विकास	धान	
	कैंजू	दलहन	
	तिलहन	पटसन	
	मसाला	सब्जी	
	कंदमूल	गन्ना विकास के विशेष कार्यक्रम	10
वानिकी क्षेत्र	भूमि संरक्षण	वन्यप्राणी संरक्षण	
	पर्यावरण संरक्षण	वैकल्पिक ऊर्जा विकास	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	उन्नत चूल्हा	उपकरण बुंटन,	
	ऊर्जा बचाव	वन लगाओ	
	सामाजिक वन	कृषि वानिकी,	
	वानिकी उत्पाद विपणन	मधुमक्खी-लाह पालन	
	वानिकी नर्सरी	बंजरभूमि विकास,	
	वाटर सेड व्यवस्था		14
पशुपालन	डेयरी उद्योग		
	पशुधन बीमा		
	पशुविकास संबंधी	प्रचार प्रसार एवं विशेष पशु	
	शिक्षा	सम्पदा पालन	8
शिक्षा क्षेत्र	प्राथमिकी शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	
	सेकेन्डरी शिक्षा	उच्च शिक्षा	
	प्रौढ़ शिक्षा	व्यावसायिक शिक्षा	
	युवा केन्द्र	पुस्तकालय प्रसार	
	खेलकूद विकास	आवासिक विद्यालय	10
महिला कल्याण	आंगनवाड़ी	महिला कल्याण	
	बालकल्याण	पोषाहार	
	विधवा पेंशन	महिला मंडल	
	महिला रोजगार	महिला कृषक विकास,	
	महिला रोजगार ऋण		8
उद्योग	कृषि उद्योग	कुटीर उद्योग	
	लघु उद्योग	खादी ग्राम उद्योग	
	हथकरघा विकास		5
समाज कल्याण	श्रमिक कल्याण	जनजाति	
क्षेत्र	पिछड़ी जाति	स्वरोजगार योजना	
	ट्राइसेम	आई० आर० डी० वी०	
	बेकारी भत्ता	विकलांग	
	आवास योजना	सार्वजनिक वितरण	
	उपभोक्ता संरक्षण	भूमिहीन रोजगार गारंटी	
	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार		10

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष कल्याण क्षेत्र	नेत्रहीन	दंगापीड़ित कल्याण	
	अंतर्जातीय विवाह	निःशुल्क समूह बीमा	
	अत्याचार राहत	कानूनी सहायता,	
	बेरोजगार मुक्ति जिला योजना	बुनकर प्रोजेक्ट पैकेज योजना	
	सफाई कर्मचारी मुक्ति एवं पुनर्वास योजना		10
जनस्वास्थ्य क्षेत्र	पेयजल	टीकाकरण	
	प्राइमरी स्वास्थ्य केन्द्र	मलेरिया	
	कुष्ठ	कालाजार	
	जनसंख्या जागरण		7
कुल विकास कार्यक्रम			110

उपरोक्त समस्त सरकारी विकास कार्यक्रम जो एक सौ के करीब हैं जिसका मुख्य उद्देश्य बिल्कुल सही है और राष्ट्र-विकास के हितार्थ में है। यह समस्त विकास कार्यक्रम विशेषज्ञों के द्वारा राष्ट्र और समाज की सुख-समृद्धि के लिए बनाये गये हैं।

दुःख की बात है कि इतना बहुमूल्य सरकारी कार्यक्रम लाभार्थियों तक नहीं पहुँच रहा है।

कार्यक्रम अवस्थान–मेरे इस चयनित गाँव के अधिकाँश लाभार्थी कार्यक्रम के लाभों से तो दूर हैं ही इनके नाम भी उन्होंनं नहीं सुने हैं। कौन इस कार्यक्रम के पदाधिकारी हैं। कैसे योजना प्राप्त की जाती है। योजना प्राप्त की जाती है। योजना प्राप्ति हेतु नियम क्या है। यह बहुआयामी राष्ट्रीय विकास प्रश्न हमने सर्वेक्षण के दौरान अपने इस चयनित गाँव के अलावा देश के विभिन्न राज्य जिला, गाँव के बहुशिक्षित बुद्धिजीवियों, कृषकों से भी पूछा है किन्तु अधिकाँश लोग इतने विशाल विकास कार्यक्रमों के नामों के नामों से भी परिचित नहीं है।

आखिर समस्या का निदान क्या है–यह लेख अध्यंयन-सर्वेक्षण आधारित है जिसका मुख्य उद्देश्य, उपलब्ध सम्पदा व्यवस्था कौशल से एक आदर्श ग्राम विकास माडल का सफल उदाहरण प्रस्तुत करना।

अनुमान है कि इस गाँव का विकास बहुत जल्द/कम खर्च में हो जायेगा।

सुझाव एवं कौशल–विकास में अवरोध क्यों। कैसे हुआ, क्यों हुआ, कब हुआ, कौन दोषी है ? इत्यादि बहुत सारे जटिल प्रश्न इससे संबन्धित हैं परन्तु हमें इससे बचना है एवं विज्ञान के कौशल पर अपनी राह निकाल लेनी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(क) सर्वप्रथम हम अपने आस-पास की समस्त उपलब्ध सम्पदा की पहचान सूची प्राप्त करें। स्पष्ट चित्र मिल जाने से सम्पदा का वर्तमान एवं सम्भावी उत्पादन समझ में आ जाता है। उदाहरण के लिए किसी एक परिवार की उपलब्ध सम्पदा को लेते हैं–

–परिवार में पुरुष, महिला और बच्चे आठ सदस्य हैं।

–परिवार में पशुसम्पदा एक गाय, दो बकरी हैं।

–कृषि भूमि की सुविधा एक एकड़ है।

–अन्य सम्पदा में एक हथकरघा संयंत्र है।

–आर्थिक अवस्थान (उद्यम पूँजी) शोचनीय है।

अब इस उपलब्ध सम्पदा की वर्तमान अवस्था विश्लेषण करने करने से देखते हैं–

–परिवार के आठ सदस्य बुनियादी आवश्यकता से कमजोर हैं।

–सभी सदस्य बेकार-बेरोजगार हैं।

–पशु सम्पदा गाय सिर्फ 2 किलो दूध प्रतिदिन देती है।

–एक एकड़ भूमि में सिर्फ 10 क्विंटल धान मिलता है।

–हथकरघा संयंत्र वर्ष में सिर्फ 3 महीना चलाना संभव होता है।

अब इसी उपलब्ध सम्पदा की विकास सम्भावनाएँ (तकनीकी प्रयोग से) देखें–

–परिवार के बेकार आठ सदस्य बेकार नहीं बैठते हैं।

–पशुसम्पदा व्यवस्था से गाय 2 किलो के स्थान पर 4-10 किलो दूध देती हैं। अच्छे नस्ल के पशुओं से अधिक लाभ।

–कृषि भूमि के विविधीकरण एवं अन्य तकनीकों से 20-25 क्विंटल फसल उगा सकते हैं।

–हथकरघा के कुशल संचालन से 3 महीने की जगह 4-12 महीने चला सकते हैं।

अतः एक परिवार जैसी छोटी इकाई के लाभ आधार पर पूरे गाँव का विकास आकलन सहज ही में लगा सकते हैं।

कुल मिलाकर सम्पूर्ण गाँव का विकास ग्रामीण व्यवस्थापन कौशल के आधार पर कर सकते हैं। हर गाँव के विकास हेतु ढेर सारे सरकारी विषय विषयक विशेषज्ञ, पदाधिकारियों की सेवा मुफ्त उपलब्ध होती है।

मानव जाति के विकास व समस्याओं के निवारण में विज्ञान मदद कर सकता है। बस जरूरत है विज्ञान के सही उपयोगों पर ध्यान देने की। प्रत्येक गाँव में टैक्नोलॉजी ग्राम, स्वयंसेवी संस्थान (क्षेत्र आधारित) जैसे संगठन ग्राम विकास की स्थित दृढ़ करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराकोत्थान में
पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार का योगदान

डा० श्रेयांस कुमार जैन
रीडर–दिगम्बर जैन कालिज, बड़ौत

भगवान् महावीर के समय जैनधर्म का प्रचार बंगाल, बिहार में सर्वाधिक रहा वैसे भी 20 तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर है और भगवान् महावीर की पावापुरी और भगवान् वासुपूज्य का निर्वाणस्थल चम्पापुरी अर्थात् 22 तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि बिहार प्रदेश है अतः स्वाभाविक रूप से प्राचीन जैन श्रावक वहाँ लाखों की संख्या में होने ही चाहिएँ किन्तु राज्य विप्लव और दुर्भिक्ष आदि के कारण जैनधर्म का केन्द्र क्रमशः पूर्वप्रदेश से हटकर पश्चिम और दक्षिण में कुछ उत्तर में भी बन गया वहाँ नये नये श्रावक बनते गये। उनका सम्पर्क सराक जाति के पुराने श्रावकों से न रहने के कारण हम उन्हें भूल गये थे। वहाँ के उन सराक लोगों में जैन संस्कार अब भी विद्यमान हैं और जैन महातीर्थ सम्मेदशिखर की वे यात्रा करते रहे हैं। उनके गोत्रों में भी जैन तीर्थंकर आदि के नाम की परम्परा सुरक्षित हैं इस विस्मृत पुरानी जैन जाति की जानकारी सबसे पहिले पाश्चात्य और बंगाली लोगों ने प्रकाशित की तब जैन समाज का ध्यान उस ओर हुआ। ब्र० श्री शीतलप्रसाद जी, बैजनाथ सरावगी आदि ने वहाँ जैनधर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया किन्तु कालान्तर में प्रचार की गति धीमी होती गयी। इसके पश्चात् सन् 1969 में श्री सेठ विमलप्रसाद जैन रईस एवं बाबूश्री शिखरचन्द्र जैन खरखरी वालों के सहयोग से स्व० पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार ने सराकों के बीच में धर्म एवं शिक्षा का पुरजोर प्रचार किया।

पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार ने सराक क्षेत्र में धर्म प्रचार के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। उन्होंने गाँव-गाँव में जाकर सराकों के घरों की गणना की। उनकी स्थिति का पता चलाया। रहन-सहन आदि के आधार पर उनके ज्ञान और संस्कारों को जाना/समझा, अनन्तर सम्पूर्ण जानकारी प्राप्तकर उसे लिपिबद्ध कर पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कराकर समाज के मध्य प्रस्तुत किया। पण्डित जी के सत्प्रयासों के फलस्वरूप अनेक जगह जैन मंदिर स्थापित हुए अनेक सराक जैन संस्कारों में दृढ़ बने और धर्म प्रचार के कार्यों में सहयोगी बने। वहाँ के नर-नारियों के सहयोग से अल्प समय में भी पण्डित जी ने महान् कार्य किया। क्षेत्रवासियों के अन्दर उगते हुए कुसंस्कारों को सहज रूप में उन्मूलन किया। डॉ० राजाराम जैन ने पण्डित जमादार जी की सराकों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के बीच रहकर की गयी सेवाओं की प्रशंसा करते हुए कहा है–"भगवान् महावीर की जन्म एवं कर्मभूमिविहार के उस सरल सात्त्विक एवं स्वाभिमानी "सराकों" को जिन्हें कि समाज एवं शासन ने शताब्दियों से दरिद्र, असंस्कृत एवं पिछड़े वर्ग मानकर सदा सदा से उपेक्षा की दृष्टि से देखा था। श्री जमादार जी ने उन्हीं के मध्य वर्षों रहकर तथा स्वयं दरिद्रों जैसा जीवन व्यतीत कर उस वर्ग पर गम्भीर शोध की। अनेक आलेखों के माध्यम से सिद्ध किया कि ये लोग ही महावीर के सच्चे अनुयायी श्रावक हैं। समृद्ध वर्ग की सामन्ती प्रवृत्तियों द्वारा प्रताड़ित एवं शोषित होकर ये सराक भले ही परवर्ती कालों में आर्थिक दृष्टि से पिछड़ गये हों किन्तु उनका हृदय आज भी सरल सात्त्विक तथा भगवान् महावीर के अहिंसक विचारों से ओतप्रोत है। उनका आचरण और मनोबल आज भी उन्नत है। श्री जमादार जी ने उस समाज के विकास के लिए जो भी कार्य किये हैं, वे ऐतिहासिक हैं तथा उन्होंने सराक जाति पर जो भी शोधकार्य किए हैं, वे जैन परम्परा के इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, साथ ही विहार की प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास के गवेषकों के लिए भी "सूर्यप्रकाश" जैसा कार्य करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

पण्डित जमादार जी द्वारा लिखित 'सराक हृदय', 'जैन संस्कृति के विस्मृत प्रतीक', 'प्राच्य जैन सराक शोधकार्य' आदि पुस्तकों के माध्यम से सराक जाति के भेद, उनके जीवन, रहन-सहन, खान-पान और धैर्यवृत्ति की विशेष जानकारी मिलती है, और इन्हीं पुस्तकों से विदित होता है कि पूरे बंगाल और बिहार प्रदेश में फैली हुई सराक जाति जैनधर्म की दृष्टि से प्राचीन सांस्कृतिक जाति है। पण्डित श्री फूलचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि इस जाति में भी मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय के अन्तर्गत अनेक पट्टधर आचार्यमुनि हो गये हैं।[1]

उस क्षेत्र में कार्य करने में आई हुई कठिनाई का वर्णन करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है–"सराक जाति का कार्य जो अतिकठिन और दुष्कर समझा जाता था, जो वास्तव में कठिन है भी क्योंकि भूखा-प्यासा जंगलों में आना-जाना पड़ता है। अधिकाँश पैदल विहार करना पड़ता है। इसके बावजूद वहाँ की भाषा का परिज्ञान न होना तथा उन क्षेत्रों मे आवास आदि की व्यवस्था न होना ऐसी अनेक समस्याओं के मध्य स्व० पूज्य 105 क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी की भावना का सम्मान करने हेतु मान्य सेठ विमलप्रसाद जी रईस खरखरी एवं बाबू श्री ईश्वरचन्द्र जी खरखरी के विशेष सहयोग से बंगाल विहार उड़ीसा के सराक बन्धुओं से सम्पर्क कर ही लिया और उस क्षेत्र में जिनमन्दिर स्कूल धार्मिक अध्ययन हेतु पाठशालाएँ स्थापित की गयीं।"

---

1 पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 64

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह उनका कथन उस क्षेत्र की विषम परिस्थितियों को दिखाने वाला एक विशेष माध्यम है। उस क्षेत्र में धर्मप्रचारक कार्य नहीं कर पाये उसके पीछे कारण थे–

बिहार, बंगाल और उड़ीसा का वह क्षेत्र जिसमें विशेष रूप से सराक बन्धुओं का निवास है, आधुनिक संसाधनों के अभाव के कारण जैनधर्म के प्रचार-प्रसार से उपेक्षित हो गया। शनैः-शनैः जैनधर्मावलम्बी वे सराक बन्धु जैन क्रिया-पद्धति से अलग होते गये किन्तु पूर्व संस्कारों के कारण उनके परिवारों में सम्प्रति भी हिंसा वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। अहिंसा उनके रोम-रोम में समाहित है। जैनधर्म का मूल सिद्धान्त अहिंसा ही है। अतएव सराक जाति के लोग जैन संस्कृति की विरासत हैं।

पूर्वकाल में समाज के कार्यों की सीमा क्षेत्रीयता की परिधि में घिर जाने के कारण सुदूरवर्ती सराक क्षेत्र में जिनमन्दिर, धर्मशालाएँ एवं शिक्षा संस्थाओं का नवीन निर्माण उतना नहीं कराया गया जितना अन्य सभी क्षेत्रों में दिगम्बर मुनि, अर्यिका एवं मनीषियों की प्रेरणा से कराया गया।

पूर्व में सराक क्षेत्र की उपेक्षा से व्यथित होकर जैन धर्म/दर्शन/सिद्धान्त के उद्भट मनीषी पण्डित श्री फूलचन्द्र शास्त्री ने लिखा है–"वैसे तो सराक भाई अभी भी जैन-धर्म की प्रमुख क्रियाओं का पालन करते हैं। तीर्थंकरों की उपासना करते हैं। जैनधर्म को पूरी तरह से भूले नहीं हैं फिर भी कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं, जिनके कारण वे पूरी तरह से जैन समाज के अंग नहीं बन पा रहे हैं। गलती समाज की है। वर्तमान में जो विद्वान् पण्डित हैं, गृहस्थ होने से वे तो प्रायः पराश्रित हैं। समाज धर्म कार्यों के लिए भी कुछ व्यवस्था करती है। उसकी सीमा भी प्रायः अपना ही नगर रहता है।[1] त्यागी वृन्द भी जहाँ अनुकूलता बनती है, वहीं जाते हैं।"[1]

उक्त कारणों से सराक बन्धु जैनधर्म की अधिकांश क्रियाओं का अनुपालन करत हुए भी ब्राह्मणों का सम्मान विशेष रूप से करने लगे हैं, उनमें शादी-विवाह की क्रिया भी वैदिक रीति से सम्पन्न होने लगी है। इस तथ्य की सम्पुष्टि पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार द्वारा लिखित प्राच्य जैन सराक शोधकार्य, नामक पुस्तक से भी होती है। इसमें उल्लिखित है कि मेदिनीपुर जिले के जो सद्गोप भाई हैं, वे जैसे भगवान् नेमिनाथ की पूजा करते हैं, उसी प्रकार नारायण श्री कृष्ण को भी पूजते हैं, गेरुआ वस्त्र पहिनते हैं और वैदिक तीर्थों की वन्दना करते हैं।

'सराक हृदय' से यह जानकारी मिलती है कि उड़ीसा प्रान्त में जो रंगिया जाति के भाई-बहिन हैं वे पहिले जैन थे। 24 तीर्थंकरों की ही उपासना करते थे किन्तु अब

1. पण्डित श्री बाबूलाल जैन जमादार अभिनन्दन में प्रकाशित "सेवाओं के अनुरूप सत्कार" शीर्षक, पृष्ठ 64

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे जैनधर्म से दूर हो गये हैं और धीरे-धीरे बौद्ध होते जा रहे हैं।

इन तथ्यों से यह अवगत हुआ कि अभी तक सराकोद्धार के लिए जो कुछ किया गया है वह पर्याप्त नहीं था। इसीलिए धर्म एवं संस्कृति के संरक्षक उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज ने पुनः अलख जगाई है और कहा है कि जो कुछ किया गया है वह सराहनीय है फिर भी समाज उतने को ही पर्याप्त न मान ले। समाज ने उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर अनेक जिनमन्दिर निर्माण, पाठशालाएँ, शिक्षण संस्थान आदि खुलवाये जिनसे सम्प्रति हजारों लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

समाज से अपेक्षा है कि जैसे पण्डित बाबूलाल जैन जमादार को साहू श्री शान्तिप्रसाद जैन, श्री विमलप्रसाद जैन, बाबू श्री ईश्वरचन्द्र जी ने प्रेरणा और सहयोग देकर कार्य कराया उसी आदर्श का अनुपालन करते हुए समाज के सम्भ्रान्त महानुभावों को चाहिए कि कुछ विद्वानों को केवल सराक जाति के उद्धार कार्य करने के लिए प्रेरित करते हुए सहयोग करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंगाल के जिनबिम्ब

डॉ० रमेशचन्द जैन
रीडर एवं अध्यक्ष–संस्कृत विभाग,
वर्द्धमान कालेज, बिजनौर (उ० प्र०)

बंगाल में भगवान महावीर का परिभ्रमण हुआ था। वहाँ के सिहंभूम, मानभूम, वीरभूम और वर्दवान जिलों का नामकरण भगवान महावीर और उनके वर्द्धमान नाम के आधार पर हुआ। बंगाल के पश्चिमी हिस्से में जो सराक जाति पायी जाती है, वह जैन श्रावकों की पूर्व स्मृति कराती है। बंगाल में अब भी बहुत से जैनमन्दिरों के ध्वंसावशेष और मूर्तियाँ तथा शिलालेख पाए जाते हैं। श्रीयुत के० डी० मित्रा की खोज के फलस्वरूप सुन्दरवन के एक भाग से दस जैनमूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। सन् 1940 में पूर्वी बंगाल के फरीदपुर जिले के एक गाँव में एक जैनमूर्ति निकली थी, जो 2 फीट तीन इंच की है। बंगाल के कुछ हिस्सों में विराट जैनमूर्तियाँ भैरव के नाम से पूजी जाती हैं।[1]

डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी ने बंगाल की जैनमूर्तियों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार बंगाल में पुरुलिया, बाँकुड़ा, मिदनापुर, सुन्दरवन, राढ़ एवं वर्दवान के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण से लगभग आठवीं से 12वीं शती के मध्य की जैन प्रतिमा विज्ञान की प्रचुर सामग्री मिली है। बंगाल की जैनमूर्तियाँ दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। बंगाल में जिनों, चौमुखी, द्वितीर्थी, सर्वानुभूति, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती और जैन युगलों की मूर्तियाँ मिली हैं। जिनों में ऋषभ एवं पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। लटों से युक्त ऋषभ कभी-कभी जटामुकुट से शोभित हैं। ऋषभ एवं पार्श्व के बाद लोकप्रियता के क्रम में शान्ति, महावीर, नेमि एवं पद्मप्रभ की मूर्तियाँ हैं। जिन मूर्तियों में लाञ्छन सदैव प्रदर्शित हैं, पर सिंहासन, धर्मचक्र, अशोक वृक्ष एवं दुन्दुभिवादक के चित्रण नियमित नहीं रहे हैं। जिनों की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ ही अधिक हैं। जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है। जिन मूर्तियों के परिकर नवग्रहों एवं 23 या 24 लघु जिन आकृतियों के चित्रण इस क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय थे। परिकर की लघु जिन आकृतियों के चित्रण इस क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय थे। परिकर की लघु आकृतियाँ सामान्यतः लाञ्छनों से युक्त हैं। जिन चौमुखी मूर्तियों में अधिकाँशतः चार स्वतन्त्र जिन चित्रित हैं। सुरोहर (दिनाजपुर, बंगलादेश) से ध्यानस्थ ऋषभ की एक मनोज्ञ मूर्ति (10वीं शती ई०) मिली है। मूर्ति के परिकर में लाञ्छनों से युक्त 23 लघु जिनमूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। राजशाही जिले के मण्डोली से मिली एक ऋषभ मूर्ति में नवग्रह एवं गणेश निरूपित हैं। बाँकुड़ा में पारसनाथ, रानीबाँध, अम्बिकानगर, केन्दुआ, बरकोला, दुएलमीर, बहुलर और पुरुलिया में देओली,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाकवीरा, संक एवं सेनारा आदि स्थानों में जैनमूर्तियाँ मिली हैं। मिदनापुर के राजदारा से शान्ति एवं पार्श्व की दो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बरकोला से ऋषभ (या सुविधि) एवं अजित तथा जिनचौमुखी मिली हैं। कुमारी नदी के किनारे से दसवीं शती ई० की पार्श्व एवं कुछ अन्य जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। धरपत जैन मन्दिर से ग्यारहवीं शती ई० की पार्श्व एवं महावीर मूर्तियाँ मिली हैं। महावीर मूर्ति के परिकर में 24 लघु जिन आकृतियाँ हैं। देउभेर्य से पार्श्व (परिकर मे 24 जिनो से युक्त), सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तियाँ मिली हैं। ये 8वीं 9वीं शती ई० की हैं। अम्बिकानगर की एक ऋषभमूर्ति के परिकर में 24 जिनों की लाञ्छनयुक्त मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ 11वीं शताब्दी की हैं। छितगिरी से शान्ति एवं पारसनाथ से पार्श्व की मूर्तियाँ मिली हैं। पार्श्व के आसन पर नाग-नागी की आकृतियाँ है। केन्दुआ से मिली पार्श्व की मूर्ति में 2 नाग आकृतियाँ एवं चामरध ार सेवक आमूर्तित हैं। पुरुलिया के पाकवीरा से ऋषभ, पद्मप्रभ एवं जिन चौमुखी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। आस-पास के क्षेत्र से भी पार्श्व, जैन युगल एवं अम्बिका की मूर्तियाँ प्राप्त हैं। वर्दवान में रेन, कटवा, उजनी आदि स्थलों से जैन मूर्तियाँ मिली हैं।[2]

बंगाल में जिन चौमुखी मूर्तियों (10वीं 12वीं शती ई०) का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। इस क्षेत्र की सभी मूर्तियों में जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इस क्षेत्र की चौमुखी मूर्तियों में केवल ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ, शान्ति, कुन्थु, पार्श्व एवं महावीर की ही मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। दसवीं ग्यारहवीं शती ई० की सतदेउलिया (वर्दवान) से मिली एक मूर्ति आशुतोष संग्रहालय कलकत्ता में सुरक्षित है। मूर्ति का ऊपरी भाग शिखर के रूप में बना है। चारों दिशाओं में ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बंगाल के विभिन्न स्थलों से प्राप्त 10वीं से 12वीं शती ई० के मध्य की कई मूर्तियाँ स्टेट आर्केयोलोजी गैलरी बंगाल में हैं। पाकवीरा ग्राम (पुरुलिया) की दसवीं ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति में ऋषभ, कुन्थु, शान्ति एवं महावीर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। अम्बिकानगर (बांकुड़ा) से प्राप्त एक मूर्ति में ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं शान्ति की पहिचान सम्भव है।[3]

श्री भँवरलाल नाहटा ने जुलाई-अगस्त 1973 के अनेकान्त के अंक में 'बगाल के जैन पुरातत्त्व की शोध में पाँच दिन' नामक लेख छपवाया था। उससे बंगाल की जैनमूर्तिकला सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। विष्णुपुर के पास धरापाल नामक स्थान में एक मन्दिर में विशाल प्रतिमायें विराजित थीं। जिनमें पृष्ठ भाग वाली में भगवान आदिनाथ तथा वामपक्ष से प्रदक्षिणा करते समय भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा विराजित थी। ये दोनों जिन प्रतिमायें लगभग 1000-1200 वर्ष पुरानी अवश्य हैं। इस मन्दिर के ठीक पीछे सड़क के पार एक और मन्दिर है, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तफणमण्डित खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इन क्षेत्रों में जहाँ भी जिन प्रतिमायें हैं, उन्हें कहीं नेंगटेश्वर शिव, कहीं भैरव और कहीं अन्यान्य नामों से पुकारते हैं। इन सभी प्रतिमाओं मूल नायक तीर्थंकर के लाञ्छन एवं अन्य प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। पहले की दो प्रतिमाओं के परिकर में चौबीस तीर्थंकर उभयपक्ष में अवस्थित हैं, जबकि भगवान् पार्श्वनाथ के परिकर में महा प्रातिहार्यों के अतिरिक्त विष्णु प्रतिमा निर्माणार्थ दो हाथ और खोदकर बल दिए गए हैं।[4]

बहुलारा के एक मन्दिर में सामने वेदी पर तीन प्रतिमायें हैं। मध्यवर्ती प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है जिसे वहाँ वालों ने अनन्तदेव की प्रतिमा बतलाया। मालूम देता है कि कभी वहाँ अनन्तदेव गोत्रीय सराकों की बस्ती रही होगी। यह पार्श्वनाथ प्रतिमा अष्टमहाप्रातिहार्य और धरणेन्द्र पद्मावती युक्त है। ऊपर सप्तफण और पृष्ठभाग में भी सर्पाकृति है। परिकर में उभयपक्ष में अष्टग्रह की प्रतिमायें स्पष्ट निर्मित हैं। बंगाल और बिहार की सहस्राब्दि पूर्ववर्ती मूर्तिकला में ग्रहों के आकार स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। राजगृह-वैभारगिरी के खण्डहर स्थित प्रतिमा के परिकर में ऐसी ही नवग्रह प्रतिमायें हैं, जिनकी वेषभूषा हमें कुशाणकालीन समय तक ले जाकर खड़ा कर देती है। परवर्ती काल में पश्चिम भारत में वे केवल सूक्ष्म चिन्ह मात्र पंचतीर्थियों में अवशिष्ट रह गए थे। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के निम्न भाग में धरणेन्द्र पद्मावती हैं और मूर्ति निर्माणक दम्पतियुगल की चैत्यवन्दन करती हुई प्रतिमायें तो प्रायः सभी तीर्थंकर प्रतिमाओं में उपलब्ध हैं। यह मन्दिर पुरातत्त्व विभाग के अधीन है।

बाँकुड़ा जिले में हाउसासरा में पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा खड़ी है। इस प्रतिमा के परिकर में अष्टग्रह, महाप्रतिहार्य, धरणेन्द्र पद्मावती और बिम्ब निर्माता युगल की सुरुचिपूर्ण अभिव्यक्ति प्रेक्षणीय है।

बाँकुड़ा के पास पारसनाथ गाँव में पार्श्वनाथ की एक विशाल प्रतिमा दो भागों में विभक्त है। इस प्रतिमा परिकर में चौबीसी प्रतिमायें, बिम्ब निर्माता युगल और धरणेन्द्र पद्मावती युक्त हैं। सिंहासन के सिंह और हंस के आकार भी परिलक्षित हैं।

अम्बिका नगर में अम्बिका मन्दिर के पृष्ठभाग में एक जैन मन्दिर है। उसमें अवस्थित भगवान आदिनाथ की सपरिकर प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। प्रभु के पृष्ठभाग में तोरण है, जो समवसरण के तोरण का प्रतीक है और प्रभामण्डल भी कलापूर्ण है। भगवान् के मस्तक पर जटाकेशविन्यास अत्यन्त सुन्दर हैं। सिंहासन के नीचे वृषभलाञ्छन स्पष्ट है।

इन्द्रबीला के निकटवर्ती तालाजुड़ी गाँव में भगवान् आदिनाथ स्वामी की पद्मासन प्रतिमा तालाब के पाल पर प्रकट हुई थी। अब यह प्रतिमा कलकत्ता बड़े मन्दिर में विराजमान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाकबेडरा में जिनेन्द्र प्रतिमाओं को लोग भैरव मानकर पूजते हैं। यहाँ एक अहाते में बहुत सी जिन प्रतिमाये रखी हुई हैं। यहाँ 7 फीट ऊँची खड्गासन पद्मप्रभ भगवान् की प्रतिमा है, जिसमें परिकर नहीं है। केवल उभयपक्ष में चामरधारी इन्द्र अवशिष्ट हैं। पाकबेडरा में ऋषभदेव की पाँच प्रतिमायें हैं, जिनमें दो चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा परिकर युक्त हैं। एक पंचतीर्थी परिकरयुक्त और दो खण्डित हैं। भगवान् महावीर की दो प्रतिमायें हैं, जिनमें एक पंचतीर्थी वरिकर तोमर, तोरण भामण्डलादि प्रतिहार्य युक्त है। यहाँ की प्रतिमाओं के तोरण उपरिभाग में न होकर प्रभु के पृष्ठ भाग साँची तोरण की भाँति हैं। अम्बिकानगर की ऋषभदेव प्रतिमा का तोरण इसी प्रकार का है। दूसरी प्रतिमा के परिकर में अष्टग्रह प्रतिमायें विद्यमान हैं। अम्बिका देवी की एक खड़ी हुई प्रतिमा है एवं तीन प्रतिमायें वृक्षयुक्त हैं, जिनमें एक में उपरिभाग में जिन प्रतिमा है। वृक्ष के नीचे यक्ष-यक्षिणी और निम्नभाग में सप्तग्रह मूर्तियाँ हैं। दूसरी प्रतिमा के निम्नभाग में सिंहासन के नीचे दो कलश बने हुए हैं, जिनकी रचना शैली बंगाल के कलशों से अभिन्न है। तीसरी प्रतिमा भी वृक्ष तल में यक्ष यक्षिणी वाली है। एक शान्तिनाथ स्वामी की खण्डित प्रतिमा है, जिसमें प्रभु का लाञ्छन हरिण स्पष्ट परिलक्षित है। एक तीर्थंकर और एक चतुर्विंशति तीर्थंकर प्रतिमा है। एक चौमुख मन्दिर सर्वतोभद्र और एक चतुर्मुख स्तूप भी इन प्रतिमाओं के मध्य में विद्यमान है। कलकत्ता में प्रमुख चार दिगम्बर जैन मन्दिर हैं–1. बड़ा मन्दिर 2. नया मन्दिर 3. पुरानी बाड़ी का दिगम्बर जैन मन्दिर 4. बेलगछिया का पारसनाथ दि० जैन मन्दिर। इन मन्दिरों के अतिरिक्त पाँच चैत्यालय हैं–1. स्व० घनश्यामदास सरावगी का चैत्यालय 2. ढाका पट्टी न० 21, हंस मुकुट फर्स्ट लेन में श्री राखालदास जैन का बनवाया हुआ 3. राजेन्द्र कुमार कुँवर जी का चैत्यालय 4. जैन निलय, 9 अलीपुर पार्क प्लेस में साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा निर्मित चैत्यालय 5. सेठ वैजनाथ सरावगी का चैत्यालय। इन सबमें दिगम्बर मूर्तियाँ हैं। कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में अनेक धातु एवं पाषाण प्रतिमायें हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण पं० बलभद्र जैन ने इस प्रकार दिया है–

यहाँ की पाषाण की केवल चार जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ देखने में आयीं।

1. एक सवा तीन फीट के शिलाफाटक में चौबीस तीर्थंकरों कायोत्सर्गासन में प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। मध्य में भगवान् चन्द्रप्रभ पद्मासन में विराजमान हैं। यह प्रतिमा 9वीं शताब्दी की है।

2. पार्श्वनाथ की कुछ हल्के-भूरे-लाल पाषाण की यह प्रतिमा तीन फीट ग्यारह इंच की है। यह पद्मासन में विराजमान है। यह प्रतिमा गुप्तयुग में 5वीं शताब्दी की स्वीकार की गयी है। ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर संवर देव द्वारा किये गए उत्सर्ग का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्य अंकित है।

3. एक तीर्थंकर प्रतिमा, जिसकी चरणचौकी पर कोई लाञ्छन और लेख नहीं है, अतः यह निश्चित नहीं हो सका है कि यह किस तीर्थंकर की प्रतिमा है। इसकी अवगाहनी साढ़े चार फीट है तथ पदमासन में स्थित है। इसका काल 9वीं 10वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

4. एक पाषाण फलक में महावीर भगवान् की माता त्रिशला लेटी हुई हैं और तीर्थंकर के गर्भावतरण के सूचक 16 स्वप्न देखती हुई सुखनिद्रा का आनन्द ले रही है। फलक में 16 स्वप्न अंकित हैं। यह मूर्ति गुप्त शैली में ईसा की 5वीं शताब्दी अनुमानित की जाती है। यह मूर्ति महास्थान (बंगलादेश) से उपलब्ध हुई थी।

इसी प्रकार धातु की 5 प्रतिमायें देखने में आयीं। इनमें दो पद्मासन हैं और शेष तीन खड्गासन। पाँचों ही प्रतिमायें जैन तीर्थंकरों की हैं और प्रायः 10वीं शताब्दी की हैं। इनमें एक प्रतिमा मध्यप्रदेश से, 3 उड़ीसा से तथा एक प्रतिमा बंगाल से उपलब्ध हुई है।[5]

इन स्थानों के अतिरिक्त बंगाल के सराक क्षेत्र में अनेक स्थानों पर तीर्थंकर मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

---

1. पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन धर्म, पृ० 39 (चतुर्थ संस्करण)
2. जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ० 78-79
3. वही पृ० 151-152
4. अनेकान्त, जुलाई-अगस्त 1973, पृ० 29-30
5. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ पृ० 176

4830

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सराक–षट्पदी

डा० कपूरचन्द जैन,
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, खतौली।

सदियों पहले जैनधर्म के जो थे सच्चे पालक।
कालदोष से विमुख हुए जो जिनवाणी से श्रावक।।
रहते हैं बंगाल-उड़ीसा और मगध में नाई।
उन्हीं सराकों के स्वधर्म की दीक्षा वेला आई।।

इनके नाम गोत्र अब भी हैं, तीर्थंकर के नामों पर।
करते हैं ये गर्व आज भी अपने समुचित कामों पर।।
सीधे सरल हृदय से निश्चल ये सराक भाई हैं।
जैन संस्कारों के कारण इनमें यह निधि पाई है।।

शाकाहार सदा करते ये मांसाहार से दूर हैं।
करते थोड़ा-थोड़ा पालन जैन धर्मपरिपूर्ण हैं।।
आज पुनः धारा में इनको अपनी लाना है।
कर संस्कारित पुनः जैन इनको बनवाना है।।

पूज्य ज्ञानसागर मुनिवर ने इस पर लक्ष्य लगाया है।
अपने चातुर्मासों में फिर इनको यह समझाया है।।
लौटो अपने पूर्व धर्म में करो धर्म का पालन।
हृदयंगम कर प्रभु की बाणी करो आत्म का चिन्तन।।

इतना कहना हमें आपसे इनको गले लगाओ।
पथ से बिछुड़े भ्राताओं को पुनः आज अपनाओ।।
देकर इन्हें प्रभूत अर्थधन पक्का जैन बनाओ।
कर व्यवहार सराक-समता का इनका साथ निभाओ।।

यहाँ बैठकर प्रस्तावों से काम नहीं कुछ होगा।
इनको समझाने अब इनके घर पर जाना होगा।।
बना योजना उद्धारों की चलो बिहार-बंगाल।
सोचो समझो मेरे प्यारे, आज यहाँ तत्काल।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प० पू० उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज

के मंगल आशीर्वाद से स्थापित

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला

से प्रकाशित साहित्य

१. आराधना कथा कोश
२. क्षु० वर्धमानसागर महाराज : जीवन परिचय
३. ज्योतिर्धरा
४. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा
भाग १, २, ३, ४ (द्वितीय संस्करण)
५. भुक्ति पथ की ओर
६. अहिंसा और विश्वशान्ति
७. शाकाहार और विश्वशान्ति
८. सराकोत्थान : प्रेरणा के स्वर
६. आचार्य सूर्यसागर : व्यक्तित्व और कृतित्व
१०. सराक क्षेत्र (द्वितीय संस्करण)
११. सराक सर्वेक्षण (द्वितीय संस्करण)
१२. भगवान् राम
१३. नानी ! नानी ! कहो कहानी
१४. स्मारिका-सराक विद्वत् संगोष्ठी
१५. स्मारिका-आचार्य कुन्दकुन्द राष्ट्रीय संगोष्ठी
१६. स्मारिका-आचार्य समन्तभद्र संगोष्ठी

उपाध्यायश्री के आशीर्वाद से प्रकाशित

अन्य ग्रन्थ

– षट्खंडागमलेहणकहा
– मध्यकालीन जैन सट्टक नाटक
– महावीररास (अप्रकाशित पाण्डुलिपि का सर्वप्रथम प्रकाशन)
– अभक्ष्य विचार मार्तण्ड
– कुन्दकुन्द भारती
– जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी स्मारिका

4630

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

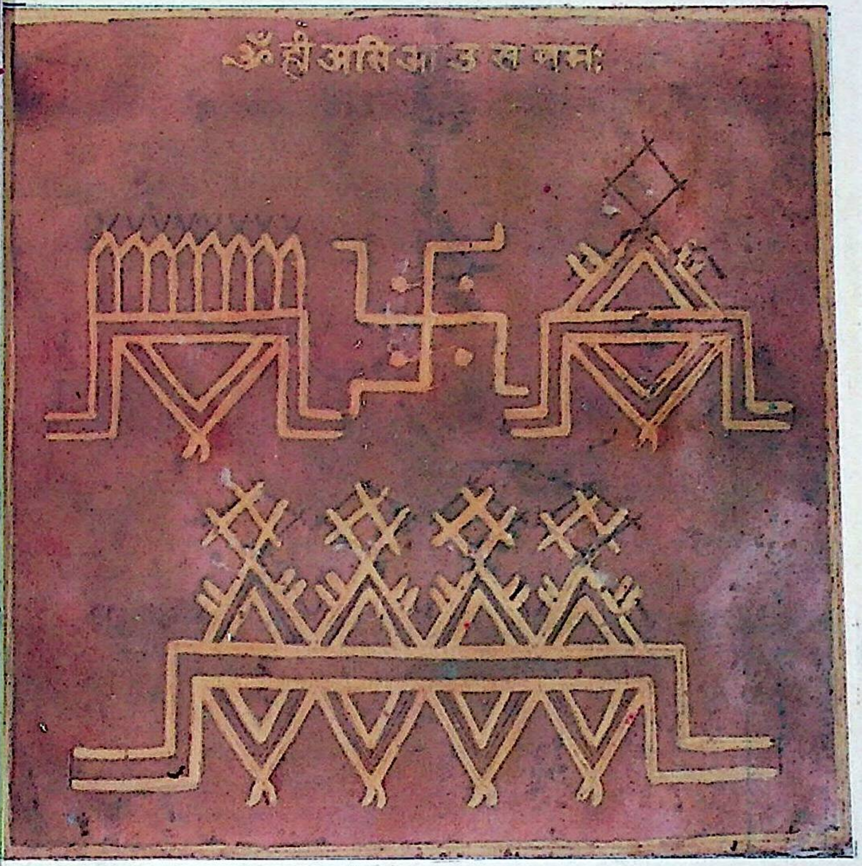

सराक क्षेत्र की लोक-कलाएँ

पुस्तक-प्राप्ति स्थल

डा० जयकुमार जैन
261/3, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर
फोन : 0131-403730

श्री अवनीश जैन
न्यू मित्तल मैडिकल स्टोर्स,
23-सी, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

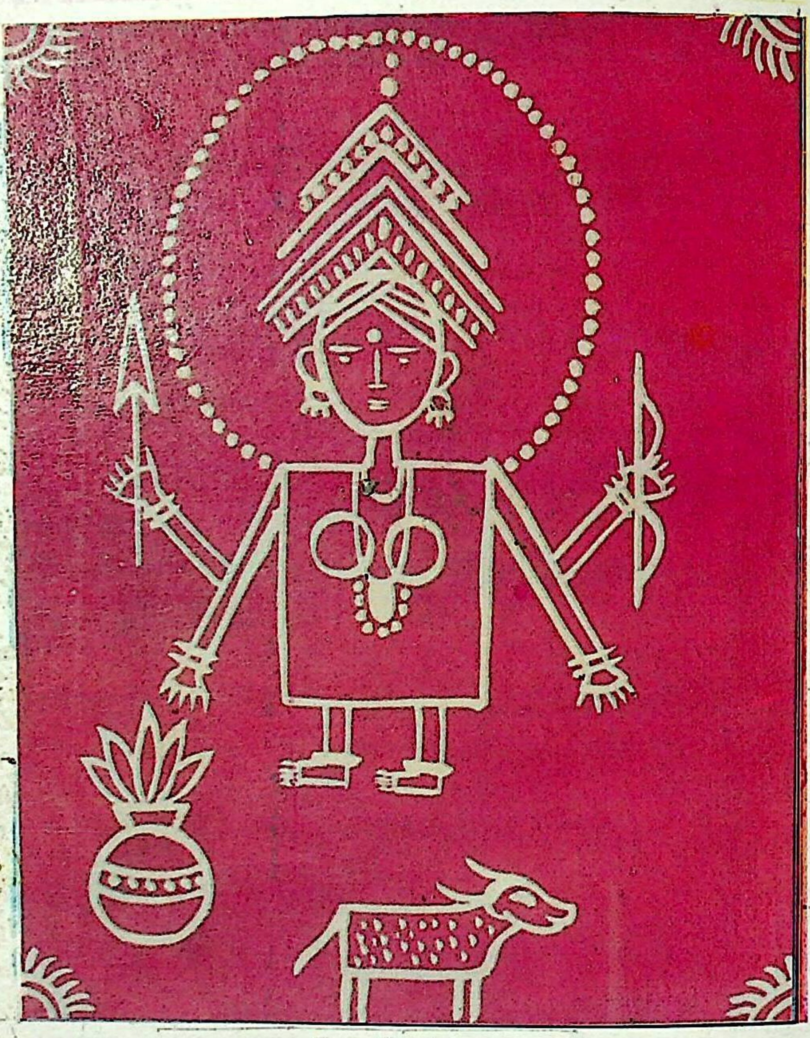

सराक क्षेत्र की लोक-कलाएँ

पुस्तक-प्राप्ति स्थल

डा० जयकुमार जैन
261/3, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर
फोन : 0131-403730

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi